Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

षष्ठ सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)- 321

चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त

(Fundamentals of Medical Astrology)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **बी0ए0एस0एल (N)- 321**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया इस्लामिया
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मुख्य-सम्पादक	**सह सम्पादन**
डॉ0 प्रभाकर पुरोहित असि0 प्रोफे0-ए.सी.,ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**श्री राहुल पन्त** असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नीरज कुमार जोशी असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	

इकाई लेखन	**खण्ड**	**इकाई संख्या**
प्रो0 देवीप्रसाद त्रिपाठी, संकाय अध्यक्ष वेद-वेदांग संकाय, वास्तुशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विश्वविद्यालय,नई दिल्ली	खण्ड 2	(इकाई 1 से 5)
डॉ0 प्रभाकर पुराहित, असि0 प्रोफे0 ए.सी., ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 2 खण्ड 3	(इकाई 1 से 4) (इकाई 3,4 एवं 5)
डॉ0 नीरज कुमार जोशी, असि0 प्रोफे0 ए.सी. संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 3	(इकाई 1 एवं 2)

आवरण पृष्ठ

डॉ0 नीरज कुमार जोशी, असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त (BASL (N)- 321)
प्रकाशन वर्ष : 2026
ISBN No.
मुद्रक:

नोट:- सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) चिकित्सा ज्योतिष का परिचय	**पृष्ठ संख्या 01-04**
इकाई- 1 चिकित्सा ज्योतिष का परिचय एवं प्रयोजन	05-11
इकाई- 2 मानव जीवन पर ग्रहों का प्रभाव	12-17
इकाई- 3 ग्रहों के प्रभाव को जानने की ज्योतिषीय प्रविधि	18-25
इकाई- 4 ज्योतिष एवं आयुर्वेद का परस्पर सम्बन्ध	26-33
इकाई- 5 रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकरण	34-44
खण्ड- दो (Section-B) आयुर्वेद एवं रोग विचार	**पृष्ठ संख्या 45**
इकाई- 1 रोग परिचय	46-54
इकाई- 2 प्राचीन पद्वतियों में रोग विचार	55-64
इकाई- 3 रोगों की साध्यासाध्यता	65-78
इकाई- 4 रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय कारण	79-89
खण्ड- तीन (Section-C) ज्योतिषशास्त्र एवं व्याधि विवेचन	**पृष्ठ संख्या 90**
इकाई- 1 रोग ज्ञान की प्रविधि	91-98
इकाई- 2 कारण रोग	99-112
इकाई- 3 विविध व्याधि योग	113-125
इकाई- 4 त्रिदोषजन्य व्याधियाँ	126-135
इकाई- 5 ज्योतिषीय चिकित्सा	136-145

खण्ड- एक (Section-A)
चिकित्सा ज्योतिष का परिचय

इकाई- 1 चिकित्सा ज्योतिष का परिचय एवं प्रयोजन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 ज्योतिष का परिचय
1.4 ग्रह प्रभाव के सिद्धान्त
1.5 रोग विचार के सिद्धान्त
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 सारांश
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक पाठ्यसामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। जिसका शीर्षक **"चिकित्सा ज्योतिष का परिचय एवं प्रयोजन"** है। प्राचीनकाल से ही ज्योतिष शास्त्र का सम्बन्ध मानव और मानवीय सभ्यता एवं तत्सम्बन्धी इतिहास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। प्राचीन काल में दो ही विज्ञान प्रमुख थे एक आयुर्विज्ञान और दूसरा ज्योतिर्विज्ञान। भारतीय वैदिक वाङमय में **"यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे"** का सिद्धान्त सुदूरतम प्राचीनकाल से ही लोकविद है। इस सिद्धान्त से ये मालूम होता है कि सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों में जो सिद्धान्त काम करते हैं, ठीक तदनुरूप प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते हैं। इसी क्रम में हम जानेंगे कि चिकित्सा ज्योतिष क्या है? कैसे रोगों की चिकित्सा की जाती है? कैसे चिकित्सा में ज्योतिष शास्त्र की परम्परा रही है? और आज के वैज्ञानिक युग में इसकी क्या प्रासंगिकता है? इत्यादि विषयों का हम विस्तार पूर्वक इस इकाई के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ज्योतिष शास्त्र का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ज्योतिष में रोग ज्ञान की परम्परा से परिचित हो पायेंगे।
- चिकित्सा ज्योतिष के सिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- ज्योतिष व आयुर्वेद शास्त्र का परस्पर क्या सम्बन्ध है? इसे जान पायेंगे।
- साथ ही ये भी जान पायेंगे कि कैसे इन शास्त्र में चिकित्सा की जाती है।

1.3 ज्योतिष का परिचय

सर्व प्रथम हम चिकित्सा ज्योतिष की बात करने से पहले सार रूप में ज्योतिष शास्त्र को समझने का प्रयत्न करते हैं- प्राचीनकाल से ही ज्योतिष शास्त्र का सम्बन्ध मानव और मानवीय सभ्यता एवं तत्सम्बन्धी इतिहास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। आदिकाल में केवल सूर्यादि ग्रहों एवं काल का बोध करवाने वाले शास्त्र को ही ज्योतिष शास्त्र माना जता था। **'ज्योतिषं सूर्यादि ग्रहाणां बोधक शास्त्रम्।'** परन्तु शनै: शनै: मानवीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य कि बाह्य एवं आंतरिक प्रवृत्तियों का अनुशीलन भी इस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाने लगा। मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप जैसे सुख-दु:ख उन्नति-अवनति, इष्ट-अनिष्ट, भाग्योदय आदि सभी का समाधान ज्योतिष शास्त्र में ढूंडा जाने लगा ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता के सम्बन्ध में किसी भी बुद्धि जीवी व्यक्ति को संदेह नहीं होना चाहिए। जैसे की पूर्व में चर्चा हुई की यह शास्त्र एक सूचलनात्मक शास्त्र है। इस शास्त्र के ज्ञान के द्वारा मनुष्य को शुभ-अशुभ काल, यश-अपयश, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु, भाग्योदयादि का ज्ञान होता है। उदाहरण के तौर पर देखें जैसे वर्षा आगमन की सूचना शीतवायु के प्रवाह से पूर्वत: ही मिल जाती है, एवं जैसे मछलीयों को सामुद्रिक तूफ़ान की पूर्वानुभूति हो जाती है, उसी भाँती ज्योतिष के आचार्यों द्वारा प्रणीत ज्योतिषीय सूत्रों से मनुष्य के अनुकूल-प्रतिकूल समय का बोध कराने वाला एक मात्र साधन ज्योतिष शास्त्र ही है। प्राचीन काल में दो ही विज्ञान प्रमुख थे एक आयुर्विज्ञान और दूसरा ज्योतिर्विज्ञान। भारतीय वैदिक वाङमय में **"यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे"** का सिद्धान्त

सुदूरतम प्राचीनकाल से ही लोकविद है। इस सिद्धांत से ये मालूम होता है कि सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों में जो सिद्धांत काम करते हैं, ठीक तदनुरूप प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते हैं। इस सिद्धांत को यदि हृदयंगम करें तो हमें प्राणी पदार्थ की आंतरिक संरचना के आधार पे ध्यान देना होगा। प्रत्येक प्राणी या पदार्थ की सूक्ष्म तथा प्रथम संरचना का आधार परमाणु है और इन परमाणुओं की इकाईयों (ईटों) को जोड़कर प्राणी या पदार्थ का वृहत्तम भवन ढांचा तैयार होता है। यह परमाणु सौर जगत के सामान आकार प्रकार वाला होता है। इसके मध्य में एक धन विद्युत बिंदु होता है, जिसे केंद्र कहते हैं इसी केंद्र के चारों और अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते हैं। और वे इस गति-विधि में सौर जगत के प्रत्येक क्रिया-कलाप का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार के अनन्त परमाणुओं जिन्हें शरीर विज्ञान की भाषा में कोशिकाएं (cells) कहा जाता है। इन्हीं कोशिकाओं के माध्यम से हमारा शरीर एवं शरीर के अवयव सौर जगत के क्रिया कलापों का अनुकरण करते हैं। प्रथम अवलोकन से हमें यह कठिन हो सकता है कि हमारे और ग्रह नक्षत्रों के मध्य कोई सीधा सम्पर्क या आदान प्रदान है। किन्तु हमें यह बात दृष्टि से ओझल नहीं होने देनी चाहिए कि विद्युत् एवं ब्रह्मांड रश्मियों द्वारा हमारा सौर जगत में स्थित ग्रहनक्षत्रों के पिंडों से सीधा सम्पर्क है जिनकी रासायनिक बनावट निरंतर परिवर्तित होती हुई हम पर सतत एवं अविछिन्न प्रभाव डाल रही है। उपरोक्त बातें निर्विवाद रूप से सत्य हैं कि ब्रह्मांड एवं उसके वासियों के बीच सतत्त सम्बन्ध मानने का समस्त श्रेय प्राचीन भारतीय ऋषि महर्षि मनीषियों को ही जाता है जिन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर ज्योतिष एवं योग शास्त्र के सुमानी सिद्धान्तों का प्रणयन किया है।

1.4 ग्रह प्रभाव का सिद्धान्त

भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार त्रिगुणात्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत सत्व, रज, एवं तमोमय है। ज्योतिष शास्त्र में भी सूर्यादि ग्रहों का इन तीनों गुणों में वर्गीकरण किया गया है।(जातकतत्व दैवज्ञ महादेव शर्मा अ.1, सु.37) जिसका अध्ययन हम अग्रिम इकाईयों में विस्तार पूर्वक करेंगे। 'जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है, उनकी अमृतमय किरणें जिनमें रजोगुण अधिक रहता है, उनकी उभय गुण मिश्रित किरणें जिनमें तमोगुण अधिक रहता है, उनकी विषम किरणें एवं जिनमें तीनों गुणों की अल्पता रहती है, उनकी गुण हीन किरणें मानी गयी हैं। ग्रहों के शुभाशुभत्व का विभाजन भी इन किरणों के गुणों से ही हुआ है। आकाश में ग्रहों की गति एवं युति से रश्मियाँ परस्पर मिलती रहती हैं और एक दूसरे के गुणों को प्रभावित करती रहती हैं। रश्मि विश्लेष्ण का सिद्धांत बताता है कि प्रत्येक ग्रहों की रश्मियों में स्थान एवं काल विशेष पर उनके गुणों में ह्रास वृद्धि होती रहती है, जिसे ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में स्थान बल, दिक्बल कालबल एवं चेष्टा बल कहा गया है। अत: ग्रहों के शुभाशुभ का विचार करते समय उनके बलाबल का विचार करना भी परम आवश्यक माना गया है। आकाश में प्रतिक्षण अमृतरश्मि सोम्य ग्रह अपनी गति से जहाँ-जहाँ गमन करते हैं, उनकी किरणें भूमण्डल के उन प्रदेशों पर पड़कर वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य एवं बुद्धि आदि पर अपना सौम्य या शुभ प्रभाव डालते हैं। विषमय किरणों वाले क्रूर ग्रह अपनी गति से जहाँ गमन करते हैं, वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य और बुद्धि पर वे अपना दुष्प्रभाव डालते हैं। मिश्रित रश्मि ग्रहों का प्रभाव मिश्रित एवं गुणहीन रश्मि वाले ग्रहों का प्रभाव अकिंचकर होता है। ग्रहों की गति एवं स्थिति की

विलक्षणता के कारण यह प्रभाव समस्त पृथ्वी पर एक सा नहीं होता क्यों कि एक कलावच्छेदन दो विभिन्न देशों पर विभिन्न ग्रहों की रश्मियां एक जैसी नहीं पडतीं। विभिन्न देशों में सूर्य एवं चन्द्र आदि ग्रहों के उदयास्त काल की भिन्नता या देशांतर संस्कार को यहाँ साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अत: यह निष्कर्ष अनायास ही समझ में आ जाता है कि स्थान विशेष पर ग्रह रश्मियों के वातावरण की अपनी निजी विशेषता के कारण वहां उत्पन्न जातक अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्मे व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव, भिन्न आकृति एवं विलक्षण शरीरावयव वाला होगा। इनके स्वास्थ्य आदि वैसा ही बन जाता है। अस्तु इस प्रबंध में मानव के स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालकर ग्रह किन-किन रोगों को उत्पन्न करते हैं? यह विचारणीय है''। (ज्योतिष में रोग विचार (रोग परिज्ञान के सिद्धांत प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)

1.5 रोग विचार के सिद्धांत

सनातनी परम्परा में यह शास्त्र उक्ति विख्यात है कि "**वेदोऽखिलं धर्ममूलम्**" वेद का लक्ष्य है ईष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार आर्थात हमारे अशुभत्व का शमन और अभीष्ट की प्राप्ति इसी सिद्धांत को हृदयंगम करके वेदांग शास्त्र ज्योतिष का भी यही लक्ष्य है कि हमारे शुभाशुभ कर्मों के वशीभूत अशुभ फल को पहचान कर जो कि जातक के जन्मांग में अशुभ ग्रहयोग, दशा व गोचर के माध्यम से हम शास्त्रानुशरण करके ज्ञात करते हैं कि अमुक व्यक्ति को अमुक कालखण्ड में अमुक रोग होगा। इन सब विषयों का ज्ञान हम विधिवत चिकित्सा ज्यतिष के माध्यम .से ही जान सकते हैं। प्राचीन भारतमें ज्योतिषशास्त्र के मनीषी चिन्तकों ने इस शास्त्रके सुमान्य नियमों द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य तथा उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार काफी गम्भीरता से किया है। आचार्य वाराहमिहिर ने अपनें बृहज्जातक में अपने से पूर्ववर्ती मय, यवन, मणिथ, शक्ति, जीव शर्मा एवं सत्याचार्य आदि मनीषियों का नामोल्लेख करते हुए बताया है कि इन विद्वानों ने मनुष्य की आयु के यथार्थ रूप से परिज्ञान के लिए अनेक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। (वृहज्जातक आयुर्दायाध्याय श्लोक -१)

यद्यपि आजकल इन आचार्यों की कोई रचना या ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। किन्तु प्राचीनकाल में इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ अवश्य रहे होंगे, जिनका सम्यक परिशीलन, मनन एवं चिंतन कर वाराहमिहिर ने मनुष्य की आयु और मानव जीवन में उत्पन्न होने वाले अनेक रोगों के योगों का प्रतिपादन किया है।

वाराहमिहिर के काल (सन ५०५) में जातक ग्रंथों में जन्मजात एवं जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले रोगों का योग, दशा एवं गोचर के आधार पर विचार होने लगा था। यद्यपि उस समय उस अन्धता, काणत्व, मूकता, बधिरता, पंगुता एवं नपुंसकता जैसे जन्मजात रोगों और ज्वर, अतिसार पाण्डु, उदर रोग, कास, कुष्ठ जलोदर क्षय, गुल्म, राजयक्ष्मा, प्रमेह, गुप्तरोग, उन्माद एवं अपस्मार आदि जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले रोगों के विचार तक सीमित रहा है। किन्तु इतने प्राचीन काल में इन रोगों को कर्मजन्य मान कर जिनके कार्य कारणों का आयुर्वेद में भी स्पष्टतया प्रतिपादन नहीं हो पाया था वे विचारणीय एवं विवेचनाधीन हैं। चिकित्सा ज्योतिष के परिचय में हमको सर्व प्रथम यह जानने की आवश्यकता है कि शास्त्र में रोगों का विचार किस पद्धति से किया जाता है, किन-किन भावों का व ग्रहों की इसमें प्रधान भूमिकाएं हैं। इत्यादि विषयों को समझना होगा। ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार रोगों का विचार इस प्रकार किया जाता है-

षष्ठ (रोग) भाव, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, व्यय तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह, षष्ठेश (रोगेश) से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव, से रोग विचार किया जाता है।[1] फलदीपिका14/1 इसके अतिरिक्त पाप प्रभाव युक्त राशियाँ एवं भाव, नीच राशि गत, अस्तं गत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, क्रूरषष्ट्याशगत ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्ट कारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं। इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की चर्या, प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है। और बहुलांश में रोग के साध्य-असाध्यत्व का निर्णय किया जाता है। इस विषय को विस्तार पूर्वक जानने से पहले ये जानना आवश्यक है कि ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है, अपितु सूचक हैं। अर्थात ग्रह किसी को सुख-दुःख नहीं देते हैं, आर्थात आने वाले सुख-दुःख की सूचना देते हैं। वस्तुत: ग्रह अपनी गति, स्थिति एवं युति के द्वारा यह व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों का हम पर सतत एवं सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है। परन्तु यह स्मरण रखने योग्य बात है कि हम इस प्रभाव के हेतु भूत भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों में विपर्यय कर इसे अन्यथा सिद्ध कर सकते हैं। ग्रह चिकित्सा दूषित फल को दूर करने के सभी उपाय इस सिद्धांत पर आधारित हैं। इस विषय पर विस्तार से विचार करने के पूर्व एक बात और स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है, अपितु सूचक हैं। अर्थात् ग्रह किसी को सुख-दुःख की सूचना देते हैं। इस सिद्धांत को और अधिक स्पष्ट करने के लिए ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए जो रत्न धारण की परिपाटी ज्योतिष-शास्त्र में प्रचलित है, उसे उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है। प्राय: सौरमण्डलीय वातावरण का प्रभाव पाषाणों के रंग-रूप आकार-प्रकार तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि तत्त्व की प्रधानता पर पड़ता है। सत्व गुण वाली रश्मियों के ग्रहों के प्रभाव में उत्पन्न व्यक्ति को वैसे ही रश्मियों के वातावरण में उत्पन्न रत्नं धारण कराया जाय, तो वह व्यक्ति नैसर्गिक क्षमताओं में वृद्धि कर उचित परिणाम देगा। यदि व्यक्ति को ग्रहों के विपरीत प्रभावोत्पन्न धारण करना इस शास्त्र का अभिप्रेत है। एक अन्य प्रकार यह है कि ग्रहों के जिन तत्वों के प्रभाव से जो रत्न विशेष प्रभावित हैं उनका प्रयोग उस ग्रह के तत्व के अभाव में उत्पन्न मनुष्य पर किया जाय तो वह क्षतिपूर्ति के सिद्धान्तानुसार उस व्यक्ति को उचित शक्ति देने वाला होगा उदाहरणार्थ कृष्णपक्ष में उत्पन्न जिन व्यक्तियों को चंद्रमा का अरिष्ट होता है। अर्थात जिन्हें चन्द्रबल या चन्द्रमा की अमृत रश्मियों की शक्ति उपलब्ध नहीं होती उनके शरीर में कैल्शियम चूने की अल्पता रहती है। ऐसी अवस्था में चन्द्र प्रभाव जन्य उक्त कमी को पूरा करने के लिए मोक्तिक मणि का प्रयोग लाभ कारी होता है। यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्र चन्द्रमा के कष्ट से पीड़ित व्यक्ति को मोती के प्रयोग का निर्देश देता है। यह प्रयोग रत्नधारण या रत्नजन्य औषधि के रूप में किया जा सकता है, मुक्ता भस्म, मुक्ता पिस्टी इत्यादि औषधि चन्द्र जन्य रोगों में लाभकारी है। इसी क्रम में अन्य ग्रहों से सम्बन्धित मणि, रत्न, औषधि का भी प्रयोग होता है, जिसके विषय में हम आगे की इकाईयों में जानेगें।

1.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार गुण कितनें प्रकार के होते हैं?
2. मणि, मन्त्र औषधि को क्या कहा जाता है?
3. आचार्य वाराहमिहिर का काल कौन सा है?
4. ग्रह, योग, दशा, गोचर का फल किस आधार पर किया जाता है?

1.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने चिकित्सा ज्योतिष के विषय में विस्तृत रूप से जाना कि किस प्रकार ग्रहों की रश्मियों का प्रभाव मानव पर पड़ता है, और उसका शुभाशुभत्व के कारण रुग्णता और स्वस्थता का क्रम चलता है। इसी प्रकार कौन-कौन से भाव, ग्रह, राशियाँ रोग प्रद स्थिति उत्पन्न करती है तथा उसके साध्यता-असाध्यता के क्या लक्षण हैं? इत्यादि विषयों का सम्यक अध्ययन किया जाता है, इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप को चिकित्सा ज्योतिष के स्वरुप को समझने में सहायता मिलेगी।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तीन सत्व, रज, तम
2. ग्रह चिकित्सा
3. 505 ई.
4. त्रिविध कर्माश्रित

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

1. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
2. चरक संहिता सूत्र स्थान/ सुश्रुत संहिता
3. प्रश्नमार्ग/माधव निदान
4. गदावाली - ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी श्री ला.ब. शा. रा. सं. विद्यापीठ नई दिल्ली
5. स्वस्थ वृत्त विज्ञान (डॉ. राम हर्ष सिंह) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम, दिल्ली

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्रिविध कर्मों का सविस्तार परिचय दीजिए।
2. रोगों का कारकत्व करने वाले भावों व ग्रहों का परिचय दीजिए।
3. चिकित्सा ज्योतिष की आज के परिप्रेक्ष्य में क्या भूमिका हो सकती है स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 2 मानव जीवन पर ग्रहों का प्रभाव

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 विषय प्रवेश
2.4 ग्रह प्रभाव
2.5 शास्त्र उपयोगिता
2.6 बोधात्मक प्रश्न
2.7 सारांश
2.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक **"मानव जीवन पर ग्रहों का प्रभाव"** है। इससे पूर्व की इकाई में आपने चिकित्सा ज्योतिष का परिचय जाना तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि कैसे ग्रहों का प्रभाव जीव जगत पर पड़ता है। अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे कि ग्रहों का प्रभाव मानव जीवन पर कैसे पड़ता है? इसके शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक आधार क्या हैं? इन सभी विषयों का अध्ययन हम इस इकाई के अंतर्गत करेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप-

- ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रह फल का परिचय प्राप्त करेंगे।
- ज्योतिष व आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से अवगत होंगे।
- साथ ही कर्मवाद और भाग्यवाद के सिद्धांतों से भी परिचित हो पायेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता से भी परिचित हो पायेंगे।

2.3 विषय प्रवेश

इस संसार रुपी महासागर में प्रत्येक जीव सुख की अभिलाषा करता है, मानव स्वभाव से स्वसुख निवेशी प्राणी है, मानव जीवन में घटित होने वाली घटनाओं सुख-दुःख उन्नति-अवनति, लाभ-हानि, रोग-शोक, आदि में पूर्व जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का भी प्रभाव होता है, क्योंकि "**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"।** ज्योतिष शास्त्र शुभाशुभ कर्मों के परिपाक का अध्ययन कर मनुष्य को सचेत करता है। जैसे कि आचार्य वाराहमिहिर ने कहा है- **यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मण: पंक्तिम्। व्यंजयति शास्त्रमेतत्मसि द्रव्याणि दीप इव।।**(लघुजातक १/२) भारतीय ज्ञानपरम्परा प्राच्य विद्याओं के पोषक दर्शन शास्त्र है। यही कारण है, कि ज्ञान को अगर किसी कसौटी पर जांचना परखना है तो, दर्शन शास्त्र की कसौटी में जांचा परखा जाता है। इसी नियम के अनुसार ज्योतिष शास्त्र को भी इसी दृष्टि के अनुसार दर्शन शास्त्र अपनी कसौटी में जांचता-परखता है।

दर्शन शास्त्र के अनुसार आत्मा अजर-अमर है, इसका कभी भी नाश नहीं होता। यह केवल कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण अनेकानेक योनियों को बदलता रहता है। प्राणी मात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्व नित्य एवं चैतन्य है, और केवल कर्मानुबन्ध के कारण यह परतंत्र एवं विनाशी दिखाई देता है।

कर्मों को करने के बाद अनिवार्य एवं अपरिहार्य रूप से मिलने वाले फल से अनुबंधित होना कर्मानुबन्ध कहलाता है। यद्यपि आत्मा साक्षात् कुछ भी नहीं करता। किन्तु आत्मा से चेतना पाकर जड मन एवं इन्द्रियां सभी कर्मों को करती है। यद्यपि आत्मा का सम्पर्क न हो तो शरीर जड़ या शव की अवस्था में चला जाता और तव कर्म करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मन एवं इन्द्रियों द्वारा कर्म करने का मुख्य कारण आत्मा का सम्पर्क है, जो इन्हें चेतना प्रदान कर सक्रिय करता है। अत: मन एवं इन्द्रियों के द्वारा किये जाने वाले कर्म का उपचार आत्मा कर्ता है और किये गए कर्मों के फल का उपभोक्ता है।

2.4 ग्रह प्रभाव

"यत ब्रह्माण्डे तत् पिंडे" इस सिद्धांत ने न केवल दार्शनिक पक्ष को सिद्ध किया अपितु ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत ज्योतिर्मान पिण्डों के प्रभाव को भी सिद्ध किया। इसलिए विद्वानों ने कहा है कि- **"ग्रहे व्याप्तमिदं सर्वं त्रेलोक्यसचरारम्"** (ना.महापुराण/ना. पञ्च रात्र) आकाशस्थित ग्रहों नक्षत्रों पिण्डों का सीधा सम्बन्ध पृथ्वी पे विद्यमान समस्त जड़ चेतन सत्ता पे है यह सहसा प्रतीत नहीं होता है, परन्तु अविछिन्न रूप से निश्चित है। इसकी यथार्तता शास्त्रों में सप्रमाण है।

ग्रह शव्द की व्युत्पत्ति पाणनीय सूत्र में **"गृह्णातिफलदातृत्वेन जीवनित्यार्थे विभाषा ग्रह: इति"** इस सूत्र से व अच् प्रत्यय से ग्रह शव्द की निष्पति हुई। (पाणनीय अष्टाध्यायी ३/१/१४३)महर्षि पराशर ने भी वृहत् होरा शास्त्र में कहा है कि जो गतिमान हो वह ग्रह है। **"य: गतिमान् स ग्रह:"** और आगे कहा **"विपुलकारखन्तोऽन्त्ये गतिमन्तो ग्रहा: किल"** सभी ग्रहों में सूर्य को प्रधान ग्रह माना जाता है। इसको ग्रह राज की संज्ञा भी दी गई है। यह अपनी रश्मियों के प्रभाव से सभी ग्रहों को प्रभावित करता है। इस प्रसंग में गोल परिभाषा में आर्यभट्ट ने भी कहा है- **"भूग्रहभानां गोलार्धानि स्वछायया विवर्णानि। अर्धानि यथासारं सुर्याभिमुखानि दीप्यन्ते"**

अखिल ब्रह्माण्ड में जो प्रकाशमय ज्योतिर्पिंड दिखाई दे रहे हैं, उन सबका सम्बन्ध न केवल मानव के साथ है अपितु सम्पूर्ण जड़-चेतन पदार्थ सृष्टि के साथ है। इसके उदाहरण एवं प्रमाण आप सृष्टि-उत्पत्ति के प्रसंग में देख सकते हैं कि पञ्च महाभूतों से जगत निर्माण की प्रक्रिया तथा इन पञ्च महा भूतों के प्रतिनिधित्व ज्योतिष शास्त्र में पञ्च तारा ग्रह करते हैं। सूर्यसिद्धांत में कहा गया है कि **"अग्नि सोमो भानुचन्द्रो ततस्वत्व अंगारकादय:। तेजोमुखाम्बुवातेभ्य: क्रमश: पञ्चयज्ञिरे"।।**

सृष्टिसंरक्षण के प्रसंग में आचार्य सुश्रुत ने भी सूर्य-चन्द्र के प्रभाव को विलक्षण रीति से स्वीकार किया है और कहा कि जहाँ चन्द्रमा भूमि में आद्रता लाता है वहीं सूर्य उसको अपने ताप से शोष लेता है तथा दोनों के प्रभाव से वायु रक्षा कर्ता है जो कि पञ्च महाभूतों व पञ्च तारा ग्रहों के अस्तित्व का प्रमाण है। **शीतांशु: क्लेदयत्युर्वी विवस्वान् शोषयत्यपि। तावुभववपि संश्रित्य वायु: पालयति प्रजा:।।**(सु.सं.सूत्र.६/८) सूर्य, चन्द्र का प्रभाव समुद्र में भी देखने को मिलता है, जब पूर्णिमा व आमावस्या की वेला पे समुद्र में ज्वार-भाटा के रूप में समुद्र की लहरें उठती है। चन्द्र का सर्वाधिक प्रभाव पृथ्वी पे पड़ता है। इसका एक कारण यह भी है कि चंद्रमा हमारे (पृथ्वी) के सबसे निकट है। अस्तु इस कारण बहुत सारे परिवर्तन देखने को मिलते हैं। चन्द्र जनित मनोरोग व अन्य व्याधि युक्त जातकों पर भी पूर्णिमा-आमा के दिन इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है, जो कि रोगोत्पत्ति या रोग वृद्धि आदि के रूप में देखने को मिलता है। यह बात बहुत सारे अनुसंधान (शोध) में भी आया है। इसका एक और उदाहरण गर्भाधारण हेतु स्त्रियों में ऋतुवति होने पर भी दिखाई देता है, इसका कारक चन्द्र और भौम है, यदि चन्द्र भौम की स्थिति अनुकूल न हो तो कही बार गर्भपात, व गर्भस्राव की भी संभावना होती है। इस प्रसंग में आचार्य वाराहमिहिर ने कहा है। **"कुजेन्दुहेतु प्रतिमासतर्व:"** (वृ.जा. निषेकाध्याय) हमारे हाईपोथैल्मस और पिट्यूटरी ग्लेनण्ड का प्रतिनिधित्व भी सूर्य-चन्द्र और लग्नेश ही करते हैं। जिसके कारण प्राय: चिकित्सा शास्त्र में देखे गये हैं कि पुरुषों में भी गर्भाधान की अक्षमता दिखाई देती है। इसके अन्य ग्रह योग भी कारण होते हैं। तात्पर्य यह है कि ग्रहों का मानवों के साथ अभेद सम्बन्ध है। गर्भावस्था से लेकर मृत्यु पर्यन्त ग्रहों के प्रभाव से प्रभावित रहते हैं। प्राय:

देखने में आता है कि एक ही परिवार के एक ही माता-पिता के कुक्ष से उत्पन्न सन्तान में भी बड़ा अन्तर होता है, कोई दुबला पतला तो कोई पुष्ट शरीर का, साथ ही रूप, रंग, बुद्धि कुशलता अलग-अलग होती है, कालान्तर में कोई अमीर तो कोई फ़कीर। इस प्रकार की विविध भिन्नता दिखाई देती है। सूक्ष्मावलोकन से ज्ञात होता है कि जातक के जन्म कालिक ग्रह योगों के प्रकृति वशाद व ग्रहों के बलाऽवल के कारण उनमें विशिष्ट गुण उत्पन्न होते हैं। इसका विस्तृत अध्ययन हम आगे की इकाईयों में करेंगे।

मानव के शरीर में उत्पन्न विविध रोगों के साथ भी ग्रहों का ही प्रभाव है जैसे कि आप परिचित होंगे त्रिदोषों (वात-पित्त-कफ) से उत्पन्न बहुत रोग होते हैं अकेले वात प्रकुपित होने से अस्सी (80) प्रकार के रोग होते हैं, पित्त से चालीस (40) और कफ से बीस (20) प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इन त्रिदोषों के प्रतिनिधित्व सूर्यादि नवग्रह करते हैं। तथा अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार रोग देते हैं। इसी का एक उदाहरण **"हृद्रोगस्य पाण्डुरोगस्य च कारक: सूर्य इति। "हृदरोगंमम् सूर्य हरिमाणं च नाशय"** (ऋग्वेद ९/४०/११) इसी प्रकार अनेकों रोगों के ग्रह प्रभाव देखने को मिलते हैं। इसी संदर्भ में आचार्य वाग्भट्ट ने कहा कि रोग ज्ञान में ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव को अनुकूलता-प्रतिकूलता का विचार अवश्य करना चाहिए। हम देखते हैं कि हमारी पृथ्वी पे कहीं वर्षा की कमी से सूखा पड़ जाता है, तो कहीं अति वृष्टि से बाढ आदि जल प्रलय होते हैं। वृष्टि इत्यादि के कारण भी ग्रह योग हैं- **चन्द्रे चन्द्रे चरेद वायु: सूर्ये सूर्ये न वर्षति। चन्द्र सूर्य समायोगं तदा वर्षति मेघराट।।** (वृष्टि प्रवोध ५/१)

साथ ही मानवों के प्रत्येक कार्यों के साथ ग्रहों का विशिष्ट सम्बन्ध हैं। प्रकृति में प्रत्येक घटना के साथ ग्रहों का प्रभाव है वायु भूकम्पादि अनेकों प्राकृतिक आपदाएं महामारियां इत्यादि घटनाएँ भी ग्रह प्रभावों का प्रतिफल है। To the Former Belong the Predicting Of Natural effrots As the Change Of Weather , Winds , Stroms Hurricanes, Thunders, Floods, Earthuakes and so forth Judiciry Astrology is the Witch Pretend Directed by the Star. (Encyclopedia of Britannica)

इसी प्रकार मानवों के सभी सुख-संसाधन भी ग्रहों के प्रभाव से प्रभावित होते हैं। इसीलिए हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों ने ग्रह प्रभावों को अपने योग-साधना तपस्या के बल से ग्रहों के विलक्षण प्रभाव का पता लगाया और शास्त्र की रचना की। जो की आज पूरे मानव जाती के लिए एक वरदान के रूप में सिद्ध है।

इन्ही प्रभावों को स्वीकार करते हुए पाश्चात्य के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलेन-लियो ने एस्ट्रोलोजी फॉर औल नामक ग्रन्थ में लिखा– It the Creation that the truth may be found in this Since of any Will Seek Laboriously in It , Withaout any Hate. The Result gined Form It Modaubt has Proved its hight Sentimented Percptions of Our ancimet says. (Astrology for All)

ग्रहों के प्रभाव से न केवल चराचर जगत प्रभावित है अपितु; सर्व शक्तिमान भगवत अवतार भी ग्रहों के प्रतिनिधित्व के रूप में भी अवतरित होते हैं। इसी प्रकार के उदाहरण आचार्य पराशर ने अपने होरा शास्त्र में दिए हैं- "**सूर्यादिभ्य: ग्रहेभ्यश्च परमात्मा अंशनि: सृता:। रामकृष्णादय: सर्वे ह्यवतारा: भवन्ति वे"।।** (वृ.पा.हो.शा.२/३) इसी प्रकार शास्त्रों में विविध उदाहरण मिलते हैं। जिससे ये पता चलता है कि वस्तुत: केवल मानव ही नहीं वल्कि सम्पूर्ण चराचर ग्रह प्रभाव से प्रभावित है।

ग्रह नक्षत्रों से निरन्तर निकलने वाली किरणों का प्रभाव केवल मानव पर ही नहीं सभी चराचर प्राणियों पर भी अवश्य पड़ता है। ज्योतिष शास्त्र का प्राय: सभी शास्त्रों के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध है। दर्शन शास्त्र, गणित शास्त्र, खगोल, भूगोल शास्त्र, मन्त्र शास्त्र, कृषि शास्त्र चिकित्सा और आयुर्वेद शास्त्र आदि शास्त्रों के साथ ज्योतिष का घनिष्ठ सम्बन्ध मिलता है। अतएव इस शास्त्र की सर्वाधिक उपयोगिता यही है कि यह समस्त मानव जीवन के परोक्ष रहस्यों का विवेचन करता है और मानव जीवन लीला को प्रत्यक्ष रूप में हुए दीपक की भांति प्रकट करता है।

2.5 शास्त्र उपयोगिता

मनुष्य के समस्त शुभाशुभ कार्य ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से ही संपादित होते हैं। व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु वर्ष एवं उत्सव तिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव समाज को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के जन्मदिन, अपनी प्राचीन गौरव गाथा का इतिहास आदि किसी भी बात का ठीक-ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथा समय सम्पन्न किया जा सकेगा। शिक्षित और सभ्य समाज की तो बात ही क्या भारतीय अनपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष ज्ञान से परिचित हैं। वह भली-भान्ति जानता है कि किस नक्षत्र में वर्षा अच्छी होती है, अत: कब बोना चाहिए जिससे फसल अच्छी हो। यदि कृषक ज्योतिष शास्त्र के उपयोगी तत्वों को न जानता तो उसका अधिकांश श्रम निष्फल हो जाता।

कुछ महानुभाव ये तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि आज के वैज्ञानिक युग में कृषि शास्त्र के मर्मज्ञ असमय में ही आवश्यकतानुसार वर्षा का आयोजन या निवारण कर कृषि कर्म को सम्पन्न कर लेते हैं। इस दशा में कृषक के लिए ज्योतिष के ज्ञान की आवश्यकता नहीं। परन्तु उन्हें यह भूलना नहीं चाहिए कि आज का विज्ञान भी ज्योतिष शास्त्र का एक लघु शिष्य है। ज्योतिष शास्त्र के तत्वों से पूर्णतया परिचित हुए विना भी समय किसी रोग घटना का निदान में और निवारण नहीं कर सकता है। वास्तविक वात यह है कि चन्द्रमा जिस समय जलचर राशिऔर जलचर नक्षत्रों में संचार करता है, उस समय वृष्टि होती है। वाराही संहिता में भी कुछ ऐसे सिद्धांत आये हैं जिनके द्वारा जलचर चांद्र नक्षत्र दिनों में वर्षा का आयोजन किया जा सकता है।

प्राचीन मंत्र शास्त्र में वृष्टि के आयोजन और निवारण की प्रक्रिया बतायी गई है, उसमें जलचर नक्षत्रों को आलोड़ित करने का विधान है सारांश यह है कि वैज्ञानिक जलचर चन्द्रमा के तत्वों को ज्ञात कर जलचर नक्षत्रों के दिनों में उन तत्वों का संयोजन कर असमय में वृष्टि का निवारण जलचर चन्द्रमा के जलीय परमाणुओं के विघटन द्वारा संपन्न किया जा सकता है। ज्योतिष शास्त्र के अन्यतम अंग संहिता शास्त्र में इस प्रकार की चर्चायें आती है। भद्रबाहु संहिता के शुक्रचार अध्याय में शुक्र की गति के अध्ययन द्वारा वृष्टि का निवारण किया गया है। अतएव यह मानना पडेगा कि ज्योतिष तत्वों की जानकारी के विना कृषि कर्म सम्यकतया संपन्न करना संभव नहीं। अत: इन सब चर्चाओं से आप को विदित हो ही गया होगा कि ग्रहों का प्रभाव प्राणी मात्र ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जड़-चेतन सत्ता को कितना प्रभावित करता है।

2.6 बोधात्मक प्रश्न

1. ग्रह राज की संज्ञा किसको दी गई है?

2. पृथ्वी के समीपवर्ती ग्रह कौन है?

3. मन का कारक कौन सा ग्रह है?

4. पञ्च महाभूतों का प्रतिनिधित्व कौन करता है?

2.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि किस प्रकार ग्रहों का प्रभाव इस सम्पूर्ण चराचर जगत पे पड़ता है। हमारे पूर्वजों ऋषि-महर्षियों आचार्यों की कठिन तपस्या एवं साधना का प्रतिफल ही ज्योतिष शास्त्र है। जिसके माध्यम से हम जीवन में घटित होने वाली सम्पूर्ण शुभाशुभ घटनाओं का बोध कर सकते हैं। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने पर अवगत होता है। वह प्रत्येक वस्तु के आदि कारण की खोज का कर्ता है। और उसके सम्बन्ध में सभी अद्भुत बातों को जाननें के लिए लालायित रहता है। जब तक उसकी यह ज्ञान पिपासा शांत नहीं होती, उसे चैन नहीं पड़ता। फलत: आदि मानव के मष्तिष्क में भी यत्किंचिद विकास के अनन्तर ही समय, दिशा और स्थान जिनके बिना उसका काम चलना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था। यह निश्चित है कि किसी भी प्रकार के ज्ञान का स्रोत समय, दिशा और स्थान के बिना प्रवाहित नहीं हो सकता है इसलिए उपरोक्त जिज्ञासाओं का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के द्वारा संपन्न होने पर ही अन्य विषयों का ज्ञान मानव को हुआ होगा। आशा है कि प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप ग्रहों के मानव जीवन में पड़ने वाले शुभाशुभ प्रभावों को जाननें में सहायता मिलेगी।

2.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. सूर्य

2. चन्द्र

3. चन्द्र

4. पञ्च तारा ग्रह

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्य सामग्री

1. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी, श्री. लाल. बहादुर शास्त्री रास्ट्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय नई दिल्ली)
2. चरक संहिता सूत्र स्थान/सुश्रुत संहिता
3. प्रश्नमार्ग
4. माधव निदान
5. गदावली
6. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
7. ज्योतिष तत्व
8. भारतीय ज्योतिष (नेमि चन्द्र शास्त्री)

2.10 निबन्धातम्क प्रश्न

1. मानव जीवन पर पड़ने वाले ग्रहों के प्रभाव का आधार क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. ग्रहों का प्रभाव वस्तुओं में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, स्पष्ट कीजिए।
3. वृष्टि विज्ञान में ज्योतिष शास्त्र की भूमिका को विस्तृत रूप से लिखिए।
4. ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता और महत्व पर निबंध लिखिए।

इकाई- 3 ग्रहों के प्रभाव को जानने की ज्योतिषीय प्रविधि

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विषय परिचय
3.4 मानव जीवन की यथार्तता व क्रम प्रवाह
3.5 जीवन के घटनाक्रम को जानने की प्रविधि
3.6 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्यसामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। जिसका शीर्षक **"ग्रहों के प्रभाव को जानने की ज्योतिषीय प्रविधि" है।** इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मानव जीवन में ग्रहों के प्रभाव का विस्तृत रूप से अध्ययन किया। अब इसी क्रम में हम पढेंगे कि ग्रहों के प्रभाव को जानने की क्या-क्या प्रविधियां हैं? ज्योतिष शास्त्र में इन सब के मूल सिद्धांत क्या हैं? इन सभी तथ्यों का अध्ययन हम इस इकाई में करने जा रहे हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद् आप-

- ❖ विषय वस्तु का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ ज्योतिष ग्रहों के प्रभाव को जानने की प्राविधि से अवगत होंगे।
- ❖ ग्रह फल के सिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- ❖ शास्त्र की वैज्ञानिक तथ्यों से परिचित हो पायेंगे।

3.3 विषय परिचय

ग्रहों के प्रभाव को जानने के लिए हमारे ऋषियों के पास एक बहुतसूक्ष्म, विश्वसनीय एवं व्यापक साधन था जिससे ग्रहों के प्रभाव को सुनिश्चित रूप से जांचा और परखा जा सकता था। वह साधन था योग, जिसके द्वारा वे सूक्ष्म मापक एवं दूरवीक्षक यंत्रों के विना ही इस ब्रह्माण्ड के बारे में सब कुछ जान सकते थे, उन्हें जांच और परख सकते थे और उनका वर्गीकरण भी कर सकते हैं।

उन्होंने योग साधना द्वारा अपनी इन्द्रियों की शक्तियों को भीतर ही भीतर उन्नत कर उन्हें इस योग्य बना लिया था कि वे काल के उन अल्पतम क्षणों को तथा पदार्थ के उन सूक्ष्म भागों को भी जान सकते थे, जिन्हें विज्ञान के नवीनतम् उपकरण भी माप नहीं सकते थे। अपनी इसी विशेषता के कारण वे काल की अल्प अवधियों और लोंक-लोकान्तरों को जान लेते थे जिन्हें बड़े से बड़ा प्रायोगिक ज्ञान भी हमारी दृष्टि में नहीं ला सकता है।

3.4 मानव जीवन की यथार्तता व क्रम प्रवाह

इस जगत में मानव जीवन का अस्तित्व क्या है? व मानव जीवन क्या है? इस प्रश्न का तथ्य पर आधारित तर्क संगत और यथार्थ मूलक उत्तर देने का प्रयत्न किया जाय तो यह है कि मानव जीवन समस्याओं और संकटों की सत्य कथा है। जीवन में ऐसा कोई स्थान या क्षण नहीं जब मनुष्य को किसी न किसी समस्या या संकट से जूझना न पड़े। सारे प्रयत्न और अच्छी से अच्छी व्यवस्था के वाबजूद उसके समस्या एवं संकटों का सिलसिला बना ही रहता है। जैसे हम लोग प्रतिदिन अपने घर और आफिस की कई-कई वार सफाई करते हैं और करवाते हैं, फिर वहाँ कूड़ा आ जाता है। ठीक इसी प्रकार शारिरीक, मानसिक, बौद्धिक एवं सामाजिक प्रयत्न ठीक व्यवस्था बनाने के वाबजूद भी जीवन में कभी भी समस्या तथा संकटों से मुक्ति नहीं मिलती। वस्तुत: यह जीवन का स्वभाव है, जो जीवन के साथ उत्पन्न होता है और उसी के साथ समाप्त होता है।

इन समस्याओं और संकटों के कारण और निवारण का प्रतिपादन करने वाले ऋषियों का मत है कि यह कर्मजन्य है। जैसे जन्म और मृत्यु कर्मानुबन्ध के परिणाम हैं वैसे ही जन्म से मृत्यु पर्यंत के जीवन काल में घटित घटनाएँ भी कर्मानुबन्ध के ही परिणाम हैं। इस गम्भीर विषय को अपनी दार्शनिक शैली में स्पष्ट करते हुए हमारे ऋषियों ने इस बात को रेखांकित किया है कि- आत्मा अमर है। इसका कभी नाश नहीं होता। यह कर्मों के अनादी प्रवाह के कारण अनेका अनेक योनियों में विचरण करती है। प्राणीमात्र के शरीर में स्थित यह आत्मा नित्य, निष्क्रिय, स्वतंत्रवाशी और निर्विकार होते हुए भी कर्मबंधन के प्रभाववश, सक्रिय, परतंत्र, दुखी, जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधियों से युक्त होता है।

वस्तुत: आत्मा का अनादिकालीन कर्म-प्रवाह के कारण सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर एवं भौतिक शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है। जब एक समय मैं आत्मा भौतिक शरीर का त्याग करता है, तब वह सूक्ष्म शरीर में रहता है और कार्मण शरीर की सहायता से कर्मानुबन्ध के अनुसार पुन: नया भौतिक शरीर प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जन्म-मृत्यु का अनवरत चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक कर्म प्रवाह रूक नहीं जाता, तब संचित कर्मों का फल भोगकर आत्मा जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है इसी को मोक्ष कहते हैं। यदि मुक्ति न हो तो जन्म-मृत्यु का अनवरत क्रम प्रलय काल तक चलता रहता है। भौतिक शरीर की दो विशेषताएं हैं- पहली यह है कि इसमें प्रवेश करते ही आत्मा जन्म-जन्मान्तरों के संचित संस्कारों की निश्चित स्मृति भुला देता है और दूसरी यह कि इस भौतिक शरीर में आते ही वह निष्क्रिय होते हुए भी सक्रीय स्वतंत्र होते हुए भी परिस्थितियों से परतंत्र वाशी होते हुए दु:ख दायक भावों से आक्रान्त विभु या सर्वगत होते हुए भी सीमित और निर्विकार होते हुए भी सुख-दु:ख आदि विकारों का अनुभव करने लगता है। नित्य शुद्ध एवं वुद्ध आत्मा को इस स्थिति में पहुंचाने वाला एक मात्र कारण कर्मानुबन्ध है। निष्क्रिय एवं निर्विकार होते हुए भी आत्मा का कर्मानुबन्ध में बंधने का कारण यह है कि आत्मा निष्क्रिय होते हुए भी अपने संपर्क मात्र से जड़ शरीर, इन्द्रिय एवं मन को चैतन्य प्रदान कर सक्रिय बना देता है। वास्तविकता में मन अचेतन तथा क्रियाशील है और आत्मा क्रिया शून्य तथा चैतन्य प्रदान करने वाला है। आर्थात् आत्मा के संपर्क मात्र से चेतना प्राप्त कर जड़ होते हुए भी मन समस्त कार्यों को कर्ता है। यदि आत्मा मन को चेतना प्रदान न करे, तो क्रियाशील मन भी निष्क्रिय हो जाता है। इसलिए मन की क्रियाशीलता में आत्मा का संपर्क हेतु है। परिणामत: वह मन के द्वारा किये गए कर्मों का उपचार करता है और इसलिए उन कर्मों के फल का उपभोक्ता भी है।

यदि आत्मा को कर्ता न माना जाय तो सुख-दु:ख, गति-अगति, ज्ञान शास्त्र, जन्म-मृत्यु और बंधन मोक्ष आदि कुछ भी नहीं होगा। अत: वैदिक दर्शन के सभी ऋषियों एवं आचार्यों ने कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद जैसे कालजयी सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए आत्मा को कर्ता माना है। इनके मतानुसार आत्मा निमित है किन्तु जैसे कुम्हार के बिना मिटटी, डंडा एवं चाक आदि रहने पर भी घड़ा नहीं बनता या राजमिस्त्री के बिना ईंट, सीमेंट, लोहा, करनी वसूली आदि के होने पर भी मकान नहीं बनता। ठीक उसी प्रकार मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों के समूह मात्र से कोई कर्म नहीं होता। इन सब को सक्रिय करने वाला आत्मा है। जैसे बिजली के संपर्क से विद्युत उपकरण अपना निहित कार्य करते हैं ठीक उसी प्रकार। इसलिए मन, बुद्धि एवं इन्द्रिययों के द्वारा किये गये कर्मों का कर्त्ता आत्मा है।

3.5 जीवन के घटनाक्रम को जानने की प्रविधि

आत्मा के द्वारा जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ एवं अशुभ कर्मों के परिणाम स्वरुप उसका जन्म होता है और कर्म फल भोगने के लिए यह जीवन मिलता है। उसको इस जीवन में किस कर्म से कब-कब, कैसे-कैसे और क्या क्या मिलेगा? इस सब घटनाक्रमों को जानने का विश्वसनीय एवं एकमात्र साधन है- ज्योतिष शास्त्र। जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थों का बोध करा देता है, ठीक उसी प्रकार यह शास्त्र जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ-अशुभ कर्मों एवं इस जन्म में मिलने वाले परिणामों को हृदयंगम करा देता है। इसलिए सारांश में कहा जा सकता है कि जीवन का घटनाक्रम जन्म-जन्मान्तरों में किये गए कर्मों का प्रतिफल है और उसे ही सही रूप से जानने का साधन ज्योतिष शास्त्र है। जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्म तीन प्रकार के होते हैं- १. संचित, २. प्रारब्ध एवं ३. क्रियमाण। इन कर्मों के फल को जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक पराशर, गर्ग एवं जैमिनी प्रभृति महर्षियों ने तीन प्रविधियों का आविष्कार एवं विकास किया। यथा- संचित कर्मों के फल जानने के लिए योग पद्धति, प्रारब्धकर्मों का फल जानने के लिए दशा पद्धति और क्रियमाण कर्मों के फल को जानने के लिए गोचर पद्धति। इस प्रकार यह शास्त्र कुण्डलीकी ग्रहस्थिति एवं ग्रहयोगों के द्वारा संचित कर्मों के फल का दशा अंतर्दशा आदि के द्वारा प्रारब्ध कर्मों के फल का और गोचर द्वारा क्रियमाण कर्मों के फल का विचार करता है। तात्पर्य यह है कि ज्योतिष शास्त्र इस जन्म और अन्य जन्मों के समस्त कर्मों को उक्त तीन वर्गों का उपभोग कर्ता है।

फल

संचित फल	प्रारब्ध फल	क्रियमाण फल
प्रविधि	प्रविधि	प्रविधि
ग्रह योग	दशा	गोचर

दशा

विंशोतरी	अष्टोतरी	योगनी	अन्य

गोचर

दीर्घकालीन	तात्कालीन
ताजिक	राशिचार, नक्षत्रचार, अष्टकवर्ग एवं प्रश्न

3.6 फल और उसके भेद

सामान्यतया जिसे फल या कर्म फल कहा जाता है वह जीवन का घटनाक्रम ही है। जीवन में जो-जो घटनाएँ जब-जब और जैसी-जैसी घटित होती है वे सब कर्मफल के ही परिणाम हैं। इसलिए जीवन के घटनाक्रमों को फल कहते हैं और ज्योतिषशास्त्र उसको जानने के नियमों सिद्धान्तों, प्रविधियों एवं पद्धतियों से हमें परिचित कराता है। ज्योतिष शास्त्र में कर्म फल का निर्धारण करने के लिए यह फल पांच प्रकार का माना गया है- १. सामान्यफल, २. योगफल, ३. स्वाभाविक फल (आत्मानुभावानुरुपी) फल, ४. दशाफल, ५. गोचर फल।

सामान्यफल- ग्रहों का जो फल सभी जातकग्रंथों में दिया गया है उनको चालीस प्रकार की स्थिति, युति, दृष्टि, बल एवं अवस्था आदि के अनुसार निर्धारित किया जाता है- वह सामान्य फल कहलाता है। यह फल ४० सामान्य आधारों द्वारा निर्णीत होता है। इस फल के निर्णायक आधार हैं- १. परमोच्च, २. उच्च , ३. आरोही, ४. अवरोही, ५. परमनीच ,६. नीच, ७. मूलत्रिकोण, ८. स्वगृही, ९. मित्र ग्रही, १०. अति मित्र गृही, ११. समगृही, १२. शत्रु गृही, १३. अतिशत्रु, १४. उच्चनवांश , १५. नीचनवांश, १६. वर्गोत्तमस्थ १७. शत्रु नवांश, १८. शुभ षष्ट्यांश, १९. पापषष्ट्यंश,२०. परावातंशस्थगृही, २१. क्रूरद्रेवेष्काण, २२. शुभ द्रेवेश्काण, २३. उच्स्थ, २४. नीचस्थ के साथ ,२५. शुभ ग्रह के साथ, २६ पाप ग्रह के साथ, २७. शुभ दृष्ट, २८. पाप दृष्ट, २९. स्थानबल, ३०. दिग्बल, ३१. काल बल, ३२. चेष्टावली ३३. भाव वाली , ३४. क्रुराक्रांत, ३५. निर्बल ,३६.मार्गी, ३७. वक्री, ३८. अवस्थानुसार, ३९. राशि में स्थित वश एवं ४०. भाव में स्थित वश।

योग फल- ग्रह योग को ज्योतिष की आम बोलचाल की भाषा में योग कहा जता है। यह ग्रह योग का पूर्व-पद्लोप होने से बना है। यह फल विशेष फल कहलाता है क्यों कि जिस जातक (व्यक्ति) की कुंडली में जो योग होते हैं- उन उनका फल उस व्यक्ति को उन ग्रहों की दशा अन्तर्दशा में मिलता है। इन योगों के आधार पर योगों के कारक ग्रहों कि दशा अन्तर्दशा में मिलने वाला फल योग फल कहलाता है।

स्वाभाविक (आत्मभावानुरूपी) फल- ग्रहों के सामान्य फल एवं योग फल में बहुधा विरोधा भास मिलता है। क्यों कि कोई ग्रह उच्च राशि में होते हुए नीच नवांश में और मित्र राशि में होते हुए शत्रु नवांश में हो सकता है। इसी प्रकार केन्द्र स्थित होने के कारण पंच महापुरुष योग बनाने के साथ–साथ रिका योग या केमद्रुम योग बना सकता है। सामान्यफल एवं योग फल के इन विरोधाभासों को ध्यान में रख कर ग्रहों के यथार्थ फल का निर्धारण करने के लिए उनके स्वाभाविक फल का विचार विंशोतरी दशा के आधार पर किया जाता है। ग्रहों के स्वाभाविक फल की यह विशेषता है कि उसमें परिवर्तन तो होता है किन्तु वह सकारण होता है तर्कसंगत है। ग्रहों के सामान्य एवं योगफल में जैसा सांयोगिक विरोधाभास है, वैसा उनके स्वाभाविक फल में नहीं मिलता।

स्वाभाविक फल में विरोधाभास लगता है पर होता नहीं जैसे- योग कारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर पापी ग्रह भी अपनी दशा-अन्तर्दशा में योगज फल देते हैं। यहाँ प्रथम दृष्टि में यह लगता है कि योग कारक ग्रह की दशा में पापी ग्रह की अन्तर्दशा में योगज फल मिलना एक विरोधाभास है क्यों कि योगकारक एवं पापी ग्रह आपस में विरुद्ध धर्मी हैं किन्तु वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधाभास को दूर करने की क्षमता रखता है।

ग्रहों का आत्मभावानुरूप या स्वभावाविक फल वह फल है- जो ग्रहों के भाव स्वामित्व, उनके आपसी सम्बन्ध एवं सधर्म आदि पर आधारित होता है। इस फल की यह विशेषता है कि इसमें बहुधा परिवर्तन नहीं होता। जैसे समय एवं परिस्थितियों के दबाव में कभी-कभी व्यक्ति की मानसिकता में कुछ अन्तर पड़ने के वाबजूद भी उसके स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ता। लगभग उसी तरह ग्रहों कि स्थिति एवं बल आदि के भेद के बावजूद भी ग्रहों के स्वाभाविक फल में अन्तर नहीं पड़ता।

इस स्वाभाविक फल का निर्णय करने की प्रक्रिया में कभी- कभी कुछ अन्तर दिखाई पड़ते हैं, किन्तु वे प्रक्रिया की गतिशीलता के अंग या प्रक्रिया की अवस्था के गुण धर्म हैं।

वस्तुत: निर्णय की समग्र प्रक्रिया से निकलकर निर्णीत होने के बाद ग्रह का स्वाभाविक फल नहीं बदलता। यह अलग बात है कि स्वाभाविक फल जब मिश्रित के रूप में निर्णीत हो तो कुछ लोग उसमें विरोधाभास की कल्पना कर पारस्परिक विरोध खोजने लग जाते हैं। किन्तु मिश्रित फल कि प्रकृति ही मिली-जुली होती है। और उसमें भी मिश्रण एक सुनिश्चित मात्रा में होता है और उसकी मात्रा तर्क पर आधारित होती है न की दशा में पापी ग्रह की अंतर्दशा में योगफल मिलना एक विरोधाभास है क्योंकि योगकारक एवं पापी ग्रह आपस में विरूद्ध धर्मी हैं। किन्तु वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधाभास को दूर करने की क्षमता रखता है।

दशा फल– फलादेश की प्रक्रिया में दशाफल की निर्णायक भूमिका होती है। यह फल दशा पर आधारित होने के कारण दशा फल कहलाता है। व्यक्ति को उसके जीवन में ग्रहों का फल कब-कब मिलेगा? इसका ज्ञान करने के लिए दशा पद्धति का विकास किया गया है।
पराशर एवं अन्य आचार्यों के होरा ग्रंथों में दशाओं के अनेक भेद मिलते हैं इनमें नक्षत्र दशा के दश भेद प्रमुख हैं– १. विंशोतरी दशा, २. अष्टोतरी दशा, ३. षोडशो- तरी दशा, ४. द्वाद्शोतरी दशा, ५. पंचोतरी दशा, ६. शताव्दिका दशा, ७. चतुरशीतितमा दशा, ८. दिप्नति दशा, ९. षष्टी हायानि दशा और १०. त्रिंशतसमादशा इसके अलावा कालचक्र आदि दशा का वर्णन फल की सूक्ष्मता एवं निश्चितता के लिए किया जाता है। महर्षि जैमिनी ने राशियों की दशा के साथ-साथ मण्डूक, रूद्रग्रह ब्रह्मग्रह एवं शूल ग्रह आदि की दशा का भी विचार किया है।

मनुष्य को प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिए जो जीवन मिला है, उसके शुभाशुभ घटना को जानने के लिए भारतीय ज्योतिष शास्त्र में दशा पद्धत्ति का उपयोग किया जाता है। इन दशाओं में से विंशोत्तरी दशा उत्तर भारत, अष्टोत्तरी दशा गुजरात, महाराष्ट्र सहित दक्षिणभारत में और योगनी दशा गढवाल-कुमाऊं, हिमाचल जैसे पर्वतीय प्रदेशों में प्रचलित है।

सारांश यह है कि जन्म कुण्डली के योगों का मनुष्य को अपने जीवन में कब-कब और क्या-क्या अच्छा या बुरा फल मिलेगा? इसको पहले से जाननें या पूर्वानुमान करने की सशक्त प्रविधि को दशा कहते हैं और दशा, अंतर्दशा, प्रत्यन्तर दशा सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा के माध्यम से व्यक्ति के जीवन के घटनाक्रमों का निर्धारण किया जता है या यूँ कहें कि ग्रहों के प्रभाव को जाना जा सकता है।

गोचर फल- ग्रहों को राशि एवं नक्षत्रों के आधार पर निर्णीत फल, गोचर फल कहलाता है। यह क्रियमाण कर्मों के फल के सूचक होने के कारण हमारे वर्तमान जीवन से जुदा हुआ है और इसलिए मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ कर रहा है या करेगा उस सब का परिणाम जानने और पहचानने में गोचर फल की प्रमुख भूमिका होती है।

यह गोचर दो प्रकार का होता है- १. दीर्घकालिक एवं २. तात्कालिक। दीर्घकालिक से तात्पर्य एक वर्ष के भीतर के घटनाक्रम से है। इस घटना चक्र को जानने का साधन ताजिक शास्त्र है। इसके अनुसार वर्ष कुण्डली, त्रिपताकीचक्र, मुंथा, मुद्दा दशा, वर्षेश एवं इत्थशाल आदि षोडश योगों के माध्यम से एक वर्ष के भीतर के घटित घटनाक्रम की जानकारी मिल जाती है।
एक वर्ष के भीतर किस दिन घटना घटेगी? इसका निश्चय तात्कालिक गोचर द्वारा किया जता है। तात्कालिक गोचर चार प्रकार का होता है– १. राशि, २. नक्षत्रचार, ३. अष्टक वर्ग एवं ४. प्रश्न। इस प्रकार राशिचार, नक्षत्र चार, अष्टक वर्ग एवं प्रश्न कुण्डली के अनुसार एक वर्ष के भीतर कब-कब कौन-कौन सी शुभ या अशुभघटना घटित होगी? इसका विचार एवं निर्णय किया जाता है।

वस्तुत: जीवन की प्रत्येक घटना आंशिक रूप से प्रारब्ध और आंशिक रूप स्वतंत्र इच्छा शक्ति से प्रभावित होती है। अत: इसका ज्ञान एवं पूर्वानुमान दशा और गोचर इन दोनों के आधार पर किया जाता है।

3.7 जीवन की समस्याओं का कारण और उसका निर्धारण

वस्तुत: मानव जीवन की समस्या एवं संकटों की सत्य कथा है। मनुष्य अपनी पूरी बुद्धि एवं शक्ति लगाकर केवल निश्चिन्तता, शांति और संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है किन्तु वह उसको मिलती नहीं। मानव जीवन में सुख एवं सुविधा जुटाने के लिए आधुनिक ज्ञान एवं विज्ञान ने भगीरथ प्रयत्न किया है। किन्तु इसका परिणाम क्या है? इससे हम और आप सुपरिचित हैं। जैसे-जैसे आधुनिक ज्ञान एवं विज्ञान ने नयी-नयी खोजों के साथ प्रगति की है वैसे-वैसे मानव की सुख एवं सुविधाओं की आकांक्षाएं बढ़ी है। किन्तु उसके हाथ में ढाक के तीन पात के अलावा कुछ नहीं आया।

वस्तुत: किसी भी समस्या के समाधान के लिए उसके सही-सही कारण का जानना आवश्यक है। जब तक समस्या के वास्तविक कारण का निर्धारण नहीं हो जाता, तब तक उसका निवारण नहीं हो सकता। इसलिए जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं एवं संकटों के समाधान के लिए उनके सही कारण का विचार करना आवश्यक है–

वैदिक विचारधारा एवं प्राच्य विद्याओं के अनुसार जीव के जन्म-मृत्यु या बार-बार विविध योनियों में जन्म का कारण कर्मानुबन्ध है। कर्मानुबन्ध को भोगने के लिए जीव को बार-बार जीवन मिलता है। इसलिए जीवन की प्रत्येक अच्छी या बुरी घटना का कारण कर्मानुबन्ध है। इस कमानुबन्ध में संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण त्रिविध कर्म होते हैं। जीवन में जो कुछ भी ईष्ट या अनिष्ट, अच्छा या बुरा और समस्या या संकट दिखाई पड़ रहा है। उसका कारण त्रिविध कर्म है। इन त्रिविध कर्मों के परिणाम या फल को वैदिक ज्योतिष में प्रतिपादित योग दशा एवं गोचर की प्रविधि से जाना जाता है। अत: ज्योतिष शास्त्र जीवन की समस्या और संकटों को जानने तथा उनके कारण का निर्धारण करने में हमारी सर्वाधिक सहायता करता है।

अभ्यासात्मक प्रश्न-

1. ज्योतिष शास्त्र में कर्म फल का निर्धारण करने के लिए कितने प्रकार बताये गए हैं?
2. जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्म कितने प्रकार के होते हैं?
3. गोचर कितने प्रकार का होता है?
4. सामान्य फल कितने प्रकार का होता है?

3.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हमने अध्ययन किया, कि कैसे ग्रह अपना प्रभाव व फल देते हैं। वस्तुत: ज्योतिष शास्त्र एक दीपक की भाँती हमें हमारे पूर्वार्जित शुभाशुभ कर्मों के आधार पर फल कथन करता है। फल परिपाक की प्राय: सभी विधियों प्रविधियों का हमने इस इकाई के अन्तर्गत अध्ययन किया। आशा है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप ग्रह फल प्राविधि का बोध सम्यक रूप से कर पायेंगे।

3.9 अभ्यासात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. पाँच

2. तीन
3. दो
4. चालीस

3.10 संदर्भित ग्रन्थ

1. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (उ.प्र) प्रथम संस्करण। 2000
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास, 1999
3. फलदीपिका, पं. गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण, 1946
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. भावप्रकाश, दैवज्ञ श्रीजीवनाथ झा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

3.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003
2. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3. जातकालंकार, सं. डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
4. जातकपारिजात, श्री वैद्यनाथ विरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
5. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
6. ज्योतिष एवं रोग, प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रह फल के कितने प्रकार होते हैं? विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. दशा फल प्रक्रिया का आधार क्या है? स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 4 ज्योतिष एवं आयुर्वेद का परस्पर सम्बन्ध

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 आयुर्वेद एवं ज्योतिष विज्ञान
4.4 आयुर्वेद की परिभाषा
4.5 ज्योतिष व आयुर्वेद की दृष्टि में रोगोत्पत्ति
4.6 ज्योतिष और आयुर्वेद की चिकित्सा पद्दति
4.7 ज्योतिष तथा आयुर्वेद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध
4.8 बोधात्मक प्रश्न
4.9 सारांश
4.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची / सहायक पाठ्यसामग्री
4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिषके मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** से सम्बन्धित है। जिसका का शीर्षक **"ज्योतिष और आयुर्वेद का परस्पर सम्बन्ध है"** यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि शास्त्र परम्परा में जहाँ एक शास्त्र अपनी शास्त्रीय अवधारणा व सिद्धांतों की व्याख्या एवं स्पष्टता के लिए दूसरे अपने अन्य सहयोगी शास्त्रों का आश्रय लेता है, और अपने उद्देश्य में सफल होता है। यही बात ज्योतिष और आयुर्वेदशास्त्र के विषय में भी परस्पर प्रतीत होती है। इसलिए आयुर्वेद को ज्योतिष का यमल भ्राता कहा जाता है। हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है, उसे रोग कहा जता है। इन रोगों की उत्पत्ति के कारण, लक्षण, भेद एवं चिकित्सा विधि में आयुर्वेद एवं ज्योतिष में कितनी सामानता है? इस इकाई के अन्तर्गत जानेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप-

- ज्योतिष व आयुर्वेद का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- ज्योतिष व आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से अवगत होंगे।
- ज्योतिष व आयुर्वेद के अन्त: करणसिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- ज्योतिष व आयुर्वेद का परस्पर क्या सम्बन्ध है जानपायेंगे।
- साथ ही ये भी जान पायेंगे कि कैसे दोनों शास्त्र रोग निदानव रोग उपचार में एक दूसरे के पूरक हैं।

4.3 आयुर्वेद एवं ज्योतिष विज्ञान

"भारत के ऋषियों ने ग्रहों के प्रभाव एवं परिणामों को सम्भवत: दो विधियों द्वारा जाना होगा- 1. अंतर्दृष्टि एवं २. अवेक्षण।

अंतर्दृष्टि, अन्तरदर्शन या दिव्यदृष्टि एक वैयक्तिक अनुभूति है, अथवा इसको एक विशेष प्रकार की सूक्ष्मता कह सकते हैं जिसे महर्षियों ने तपस्या, सदाचारी जीवन एवं योगाभ्यास द्वारा प्राप्त किया था।

ब्रटेल रसेल के विचार में 'तथ्य संग्रह के साधन के रूप में 'अन्तरदृष्टि' एक वैध विधि है, जो पर्याप्त मात्र में वैज्ञानिक प्रविधि के आस-पास आ जाती है। अंतर्दृष्टि अभिज्ञान में एक मौलिक प्रकार की निश्चितता एवं विश्वसनीयता पायी जाती है। क्यों कि यह विचारणीय पदार्थ के प्रस्तुत या प्रशंसनीय गुण दोषों की छान-बीन में ही नहीं लगी रहती है अपितु वह उसकी अंतर्वस्तुओं की प्रकृति के विषय में सर्वथा अनासक्त रहते हुए विचारणीय पदार्थ के समग्र रूप का अवलोकन कर उसका यथार्थ रूप चित्रित करती है। महर्षियों ने योग सिद्धि के उचतर स्तर पर पहुँच कर ग्रह पिण्डों से सीधा सम्पर्क स्थापित कर उनके रहस्यों की यांत्रिक उपकारणों के बिना ही अंतर्दृष्टि अभिज्ञान द्वारा अधिगत कर उनका यथार्थ रूप से प्रतिपादन किया। इसके साथ-साथ इन्होने निरंतर आकाश एवं परिवेश का अवेक्षण कार्य किया। ऋषियों ने पृथक एवं सामूहिक घटनाओं को बार-बार घटित होने वाली ग्रह स्थितियों के प्रकरण में ध्यान पूर्वक देखकर विशेष ग्रह योगों के प्रभाव वश लोगों पर विशेष प्रकार की शारीरिक एवं एवं मानसिक प्रतिक्रियांयें देखि होगी। सैकड़ों वर्षों तक लगातार चलने वाले इस प्रकार के सर्वेक्षणों ने ऋषियों

को आश्वस्त कर दिया कि विभिन्न राशियों में विविध ग्रहों के होने पर जन्म लेने वाले जातकों में विशेष प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विलक्षणताएं होती हैं। प्राचीन ऋषियों ने केवल मन की एकाग्रता द्वारा वे तथ्य खोज निकाले, जिनके बाहरी स्तर को भी आज के वैज्ञानिक छू तक नहीं पाये हैं। इसका मुख्य कारण है चित वृतियों का निरोध जिससे विछिन्न एकाग्रता स्वयम उत्पन्न हो जाती है। चित्त-वृत्तियों के निरोध के लिए पूर्ण अनासक्ति की आवश्यकता होती है। क्यूंकि अनासक्ति के बिना न तो पूर्वाग्रह नष्ट होता है और न ही तटस्थता पूर्वक अवलोकन किया जा सकता है। इसलिए अनासक्ति के विना अज्ञात क्षेत्र की खोज करना और यथार्थ परिणाम निकाल लेना संभव नहीं है। यह चमत्कार वसिष्ठ, अंगिरा, पराशर, जैमिनी, लोमश, गर्ग पतंजलि, कपिल एवं कणाद आदि जैसे ऋषियों ने शुद्ध अंत:करण, मनोयोग एवं अनासक्ति भाव से अपनी उन्नत अंतर्दृष्टि से अदृश्य एवं अमूर्त विषयों की रहस्यमयी परतों को उलट-पलट कर महान एवं मौलिक तथ्यों एवं उनको जानने की प्रविधियों को खोज निकाली। हमारी सारी प्राच्य विद्याएँ उन्हीं के तपोमय अन्वेषण का परिणाम है।

इसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्र का भी उद्भव हुआ। आज से हजारों वर्ष पूर्व जब तपस्या, व्रत, उपवास अध्ययन में रत मनुष्यों में रोग जीवन को कष्टमय बनाने लगे तो तब हिमालय के निकट अंगिरा, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप भृगु, आत्रेय, गौत्तम, शांडिल्य, नारद , अगस्त आदि ५४ ऋषि एकत्रित होकर यह विचार करने लगे कि इन रोगों से मुक्ति का उपायय क्या है। सभी ने ध्यान चक्षु (योगविद्या) से देखा कि इन रोगों से बचने का उपाय इन्द्र के पास है। यह ज्ञान व्रह्मा से प्रजापति को, प्रजापति से अश्विनी कुमार को, अश्विनी कुमार से इन्द्र को मिला, अत: यह ज्ञान इन्द्र के पास सुरक्षित है। सभी ऋषियों ने आपस में विचार किया कि कोन ऋषि इन्द्र के पास जाकर यह ज्ञान सीखेगा। तब भारद्वाज ऋषि ने यह दायित्व खुद सम्भाला और इन्द्र के पास जाकर आयुर्वेद के त्रि सूत्र आयुर्वेद को सीखा। त्रिसूत्र हेतु (कारण) लिंग (लक्षण) तथा औषधी है। स्वस्थ व्यक्ति के हेतु, लक्षण तथा औषधि एवं रोगी व्यक्ति के रोग के कारण, लक्षण तथा औषधि का ज्ञान प्राप्त करके। आत्रेयादि ऋषियों को उपदिष्ट किया। आत्रेय ने अग्निवेश प्रमुख ६ ऋषियों को इस आयुर्वेद के ज्ञान को दिया। अग्निवेश ने प्रथम अग्निवेश तन्त्र की रचना की। बाद में चरक ने इसे परिवर्धित करके चरक संहिता के नाम से पूरित किया। हजारों वर्ष के बाद यह चरक संहिता विखण्डित हो गई, और महर्षि दृढ बल ने पूरित किया। आज जो आयुर्वेद की प्रमुख संहिता है, वह चरक संहिता ही है। वह आत्रेय काल, अग्निवेश काल,चरक काल तथा दृढ बल काल की सम्पूर्ण संहिता है। त्रिसूत्र आयुर्वेद-

हेतु लिंग औषधि ज्ञानं स्वस्थातु परायणम्।
त्रिसूत्रं शास्वतं पुण्यं वुबुधर्मं पितामह ।। च. सू.१\२४

4.4 आयुर्वेद की परिभाषा

हिताऽहितं सुखं दु:खमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तत्व भवो तत्र आयुर्वेद: स उच्यते ।। च.सू.१/४१

महर्षि चरक आयुर्वेद की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि जिस शास्त्र में, हित आयु, अहित आयु, सुखायु, दु:खायु तथा आयु का मान इनके लिए क्या उपयोगी है, क्या अनुपयोगी है इसका वर्णन जिस शास्त्र में हो, उसे आयुर्वेद शास्त्र कहते हैं। अब यहाँ पर विचार आता है कि आयु क्या है? इसका वर्णन आगे करते हुए आचार्य लिखते हैं कि शरीर, इन्द्रिय, सत्व (मन),

आत्मा, इन चार के संयोग को आयु कहते हैं। इसके धारि जीवित नित्यं तथा अनुबन्ध ये पर्यायवाची हैं। धार्यतीति जीवितम्। नित्यं शरीरस्य क्षनिक्त्वेन्न गच्छतीति नित्यग: आर्थात् प्रतिक्षण शरीर का परिवर्तन होता रहता है। अनुबन्ध गर्भावस्था के प्रथम क्षण से लेकर मृत्यु पर्यंत शरीर के साथ चेतना का अनुबन्ध रहना। यदि शरीर से चेतना (आत्मा) का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है वह मृत शरीर या पंचत्व प्राप्त शरीर होता है। इसकी अब आयु समाप्त है। तो तात्पर्य यह हुआ कि जन्म के प्रथम क्षण से लेकर आयु की समाप्ति तक के ज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं। यथाहि-

शरीरन्द्रिय- स्वात्मसंयोगो धारी जीवितम् ।
नित्यगाशचानुबन्धस्य पर्यायेरायुरुच्यते ।। च.सं.१/४२-४३

इससे यह सिद्ध हुआ कि रोगों का अधिष्ठान शरीर एवं मन है। शारीरिक रोग शरीर के होते हैं और मानसिक रोग मन के होते हैं। आयुर्वेद का आधार ही त्रिसूत्र है। अत: व्यक्ति सवस्थ कैसे रहे। इसके लिए जो भी हेतु, लिंग, औषध उन्हें स्वास्थ्य वर्धन या आरोग्यता के उपाय नाम से जाना जाता है। स्वस्थ केवल जन्मोत्तर बाल्यावस्था से न लेकर गर्भावस्था बालक की प्रथम दिन से गर्भाशय के बाहर आने तक की आयु काल को स्वस्थ एवं रुग्ण दोनों भागों में विभाजित किया जाता है। कुछ महिलाओं का गर्भपात १० दिन में हो जाता है, कुछ का एक माह में कुछ ४ माह व कुछ का ८ मास का भी यह स्वस्थ बालक का जन्म नहीं है। उसी तरह कोई बालक जन्मांध उत्पन्न हो जाता है किसी के दो शिर होते हैं कोई मूक व बधिर पैदा होता है यह भी स्वस्थ बालक का जन्म नहीं है, जोतिषशास्त्र में ऐसे जन्मजात रोगों को कर्मजन्य व्याधियों के रूप में जाना जाता है जिसे आयुर्वेद भी स्वीकारता है, आर्थात् दोनों में सामानता नजर आती है। अत: स्वस्थ रहने के लिए चाहे वह बालक हो या युवा, वृद्ध या नर-नारी, सभी के स्वस्थ रहने के लिए आयुर्वेद में उपाय बताए गए हैं तथा रोगी व्यक्ति के भी कारण, लक्षण एवं रोग शमन के उपाय कहे गए हैं। यही आयुर्वेद का प्रमुख प्रयोजन है। **"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्। आतुरस्य विकार प्रशमनं च"।। च.सं.सू.३०\२६**

4.5 ज्योतिष व आयुर्वेद की दृष्टि से रोगोत्पत्ति

ज्योतिष शास्त्र एवं आयुर्वेद दोनों इस बात पर सहमत है कि मनुष्य अपने पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश रोगी बनता है।[1 प्रश्न मार्ग 13 / 29] तथा जीवन की अन्य घटनाओं की तरह मनुष्य को होने वाले रोगों की जानकारी जन्मकुण्डली के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। आयुर्वेद का सिद्दान्त पक्ष है कि कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप रोगोत्पत्ति के हेतु है। सामान्यतया अनुचित आहार-विहार से रोग उत्पन्न होते हैं। महर्षि चरक ने भी चरक संहिता के उत्तरतंत्र में कहा है। **"मिथ्याहार विहाराभ्यां रोगोत्पत्ति प्रजायते"।**[४०/१६३] किन्तु जब ऋतू के अनुसार आहार विहार किया जाय, तन और मन सदवृत्ति से कार्य करें, मौसम भी रोगोत्पत्ति का न हो और अचानक इस स्थिति में रोग पैदा हो जाय तो उस रोग को कर्मजन्य मानना चाहिए।[३ सु.सं.] आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है, वह संचित कर्म है, जिसके एक भाग कप प्रारब्ध कहते हैं तथा मिथ्या आहार-विहार को क्रियमाण कर्म कहते हैं। इस प्रकार क्रम प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अशुभ या अनुचित कर्म ही मूल कारण होता है, इसलिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मनुष्य के पूर्वार्जित कर्मों वे चाहे इस जन्म के हो या जन्म

जन्मान्तरों के हो सभी अशुभ कर्म रोग और दुःख के सूचक होते हैं या यूँ समझें कि रोग के कारण माने जाते हैं।

शतात्पीय तंत्र में कहा गया है कि पूर्व जन्म में किये गये पाप इस जन्म में कुष्ठ, क्षय, प्रमेह, संग्रहणी इत्यादि व्याधियों को उत्पन्न करते हैं। त्रिशठाचार्य के अनुसार भी उदर रोग, गुप्त रोग, उन्माद, अपस्मार, पंगुता, कर्ण रोग, वाक्, दोष प्रमेह, संग्रहनी, अश्मरी, अतिसार, भगन्दर जैसे रोगों को उत्पन्न करते हैं। रोगोत्पत्ति के संदर्भ में आयुर्वेद के परम्परागत विद्वानों का कहना है, कि आहार-विहार की अनियमितता से रोग पैदा होते हैं और यदि मनुष्य इन पर समुचित नियंत्रण रखें, तो वह स्वस्थ एवं दीर्घजीवी हो सकता है।[४ वाग्भट्ट / माध्वादि] किन्तु जोतिश शास्त्र की मान्यता इससे भिन्न है। क्यों कि यह बात अनेक बार प्रत्यक्ष रूप से देखने में आती है कि कुछ लोग नितांत अनियमितता जीवन बिताते हैं और उनका खान-पान भी अनियंत्रित होता है। और कुछ लोग नियमित जीवन एवं सदाचार के घनी होते हुए भी रोगों के शिकार हो जाते हैं। इस विषय में इस विषय में आचार्य शंकर एवं स्वामी विवेकानंद का नाम साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिनकी मधुमेह के कारण असामयिक मृत्यु हुई। इस विषय एक ध्यान देने योग्य बात है, कि यदि मात्र आहार-विहार की अनियमितता को ही रोगोत्पत्ति का कारण मान लिया जाय तो आनुवांशिक रोग, महामारी जन्य रोग एवं आकस्मिक रोगों की उत्पत्ति के कारणों की भाँती एवं सटीक व्याख्या नहीं की जा सकती है। इस स्थिति में कहीं न कहीं खींचतान या जोड़-तोड़ करना पडेगा। यहीं कारण है कि आयुर्वेद शास्त्र ने भी रोगोत्पत्ति के कारणों का विचार करते हुए अंत में निष्कर्ष के रूप में बताया कि कभी पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाव से कभी-कभी दोषों के प्रकोप से और कभी-कभी इन दोनों के मिले-जुले असर से शारीरिक एवं मानशिक रोग होते हैं। ज्योतिषशास्त्र की मान्यतानुसार प्रत्येक छोटा-बड़ा रोग पूर्वार्जित कर्मों के फल स्वरुप उत्पन्न होता है और जन्मकाल प्रश्न काल एवं गौचर में प्रतिकूल ग्रहों के द्वारा उसकी जानकारी की जा सकती है। इस सिद्धांत के अनुसार वह किसी भी व्यक्ति की जन्मकुंडली के आधार पर वर्षों पहले यह बता सकते हैं कि उस व्यक्ति को कब कौन सा रोग उत्पन्न होगा? और उसका परिणाम क्या रहेगा?

4.6 ज्योतिषशास्त्र और आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति

आयुर्वेद ने जिन रोगों को कर्मजन्य मानकर असाध्य कह दिया और ऐसे रोगों के निदान एवं चिकित्सा पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला उन कर्मजन्य रोगों के होने की सम्भावना, उनके प्रारम्भ तथा समाप्ति का काल और उनके शमन (चिकित्सा) की विधियों का ज्योतिष शास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है। ज्योतिषशास्त्र यह बताने में समर्थ है, कि किस व्यक्ति को पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश किस समय कोन- सा रोग होगा और उसका परिणाम क्या निकलेगा। जिस प्रकार दोष (कफ, वात एवं पित्त) जन्य रोगों का आयुर्वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन एवम विवेचन किया गया है, उसी कर्मजन्य व्याधियों (रोग) का सांगोपांग विवेचन इस ज्योतिष शास्त्र में किया गया है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य रक्षणार्थ औषधि संचय, औषधि निर्माण एवं शल्य क्रिया में काल जन्य विशेषताओं को अतीव उपयोगी माना गया है।[५ सु.सं.सूत्र. १/४२।काल] आयुर्वेद में स्वास्थ्य रक्षणार्थ औषधि संचय औषधि निर्माण एवं शल्य क्रिया में कालजन्य विशेषताओं को अतीव उपयोगी माना गया है। काल के अति योग अयोग या मिथ्या योग से रोग उत्पन्न होते हैं। अविकृत ऋतु में औषधि का संचय एवं निर्माण करने से वह विशेष गुणकारी होती है और वह

ऋतु की विकृति से उत्पन्न रोगों का शमन कर देती है।[६ सू. सं. १/४२] आयुर्वेद का तो यहाँ तक कहना है कि काल की विशेषताएं अपने स्वभाव से ही दोषों का संचय प्रकोप शमन एवं प्रतीकार का देती है। अत: योग्य चिकित्सक को कालकृत का संचय प्रकोप शमन एवं प्रतीकार कर देती है। अत: योग्य चिकित्सक को कालकृत विशेषताओं को ध्यान में रखकर चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु काल का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र द्वारा होता है। चिकित्सा के लिए परमोपयोगी दिन-रात, संध्या, नक्षत्र, पक्ष, मास, ऋतु एवं पर्व आदि की जानकारी इस शास्त्र द्वारा ही दी जाती है। अत: ज्योतिष के ज्ञान के विना न तो यथा समय औषधि संचय या औषधि निर्माण ही सम्भव है और न ही शल्य क्रिया या चिकित्सा की जा सकती है। अत: जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष नियमों की जानकारी रखते हैं वे चिकित्सा में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं।

वस्तुत: आयुर्वेद ज्योतिष का चचेरा भाई है। ज्योतिष के द्वारा रोगी की चर्या, चेष्टा, आकृति सर्वांग लक्षण, शकुन एवं उसकी कुंडली के योगों के माध्यम से रोगों का अध्ययन कर यह जाना जा सकता है कि इस रोग की समयावधि कितनी होगी? क्या यह साध्य है? या असाध्य? यदि यह साध्य है, तो कितने समय में ठीक होगा? रोगी को चिकित्सा करने वाले चिकित्सक के परामर्श और उसे दी जानी वाली दवाई से लाभ होगा या नहीं? इत्यादि। ये कुछ ऐसे महतवपूर्ण प्रश्न है, जिनका ठीक तरह से समाधान आयुर्वेद या अन्य चिकित्सा शास्त्रों से नहीं किया जा सकता। किन्तु ज्योतिष शास्त्र में इन सब बातों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। इसलिए प्राचीन काल में ज्योतिष के ज्ञान की चिकित्सा में अत्यन्त उपयोगिता को ध्यान में रखकर **"ज्योतिर्वेद्यो निरंतरो"** की कहावत प्रचलित हुई होगी। इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि सामान्य व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है। क्यों कि अधिकांश रोग सूर्य एवं चंद्रमा आदि के प्रभाव वश उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी गति स्थिति एवं कलाओं के ह्रास बृद्धि द्वारा समुद्र के जल में उथल पुथल मचा देता है, उसी प्रकार यह मनुष्य के शरीर की रक्त संचार प्रणाली उसके स्नायु मण्डल एवं मन में उथल-पुथल पैदा कर निर्बल मनुष्य को रोगी बना देता है। इसलिए ज्योतिष द्वारा चन्द्रमा के तत्वों और उसके प्रभाव वाले पदार्थों को जानकार अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को वैसे पदार्थों के सेवन पर आत्मनियंत्रण रखकर मनुष्य स्वयं को रोगों के प्रकोप से बचा सकता है। काल विज्ञान, कर्मफल ज्ञान, उत्पात ज्ञान, शकुन विद्या, सामुद्रिक शास्त्र, सर्वांग लक्षण, आयुर्ज्ञान एवं मुहूर्तज्ञान आदि ये सबआचार्य चरक एवं ज्योतिष शास्त्र की आयुर्वेद को देन है, जिनका भारतीय चिकित्सा पद्धति में पग-पग पर उपयोग किया जाता है। आचार्य चरक एवं सुश्रुत संहिताएँ इसके जीवन्त साक्ष्य हैं।

4.7 ज्योतिष तथा आयुर्वेद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

प्राचीन काल में वैद्यजन ज्योतिषशास्त्र का तथा दैवज्ञ जन आयुर्वेदशास्त्र का अध्ययन करते थे। आचार्य सुश्रुत तथा अग्निवेश दोनों ने ही वैद्य को बहुश्रुत होना चाहिए ऐसा कहा है। बहुश्रुत का अर्थ है अनेक शास्त्रों (विषयों) का जानकार होना। दक्षिण भारत में विशेषकर केरल प्रदेश ज्योतिष और आयुर्वेद के गढ़ रहे हैं। यही कारण है कि फलित के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ केरलीय विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं। केरल के पंचकर्म चिकत्सा की तो भारतवर्ष में सर्वत्र धाक है।(प्रश्न मार्ग १२/१)

रोग के निर्णय एवं उसके उपचार के विषय में ज्योतिष और आयुर्वेद एक दूसरे के पूरक शास्त्र हैं। इसीलिए कि ज्योतिष ग्रह, भाव, राशि के आधार पर गुण धर्मों का निरूपण करता है तथा आयुर्वेद मनुष्य की चर्या, त्रिदोष (वात-पित-कफ) एवंआहार विहार के आधार पर रोग के गुण धर्मों का निर्णय कर उपचार करता है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि दोनों शास्त्रों में अन्योन्य सम्बन्ध है। व्याधि विचार के संदर्भ में दोनों शास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ ज्योतिष शास्त्र ग्रह राशि भाव से बनने वाले योगों से पूर्वानुमान के साथ ये बताने में समर्थ है कि अमुक जातक को कब किस काल खण्ड में कोन सी व्याधि किस अंग विभाग में होगी तथा उसकी साध्यासाध्यता कैसे होगी तथा कर्मजन्य, दोषजन्य, साध्य, असाध्य कारणों का पूर्व ज्ञान कर सकता है उसी बात की पुष्टि आयुर्वेद शास्त्र भी दोषजन्य कर्मजन्य व्याधियों के रूप में करता है। अत: उपरोक्त चर्चा का आशय यही है कि रोग निर्धारण व चिकित्सा में इन दोनों शास्त्रों (ज्योतिष-आयुर्वेद) की समान भूमिका है।

4.8 बोधात्मक प्रश्न

1. हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है, उसे क्या कहा जाता है?

क. दु:ख।

ख. रोग।

ग. क्रोध।

घ. कोई नहीं।

2. भारत के ऋषियों ने ग्रहों के प्रभाव एवं परिणामों को जानने की सम्भवत: कितनी विधियां बताई?

क. दो बिधि।

ख. तीन विधि।

ग. चार विधि।

घ. एक विधि।

3. आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्म देव ने किस को दिया?

क. प्रजापति।

ख. इन्द्र।

ग. भारद्वाज।

घ. अग्निवेश और चरक।

4. चरक संहिता किसका ग्रन्थ है?

क. आयुर्वेद।

ख. ज्योतिष।

ग. दर्शन।

घ. कोई नहीं।

4.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि ज्योतिष शास्त्र में किस प्रकार रोगों से सम्बन्धित विषयों का प्रतिपादन किया जाता है। साथ ही आयुर्वेद के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र का रोग

निर्णय व रोगों की चिकित्सा में तादात्म्य सम्बन्ध कैसा है, उससे परिचित हुए तथा आयुर्वेद के स्वरुप एवं उद्भव का बोध किया। इन सब सिद्धांतों का ज्ञान निश्चित ही चिकित्सा ज्योतिष के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा।

4.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ख.रोग।
2. क.दो बिधि।
3. क. प्रजापति।
4. क.आयुर्वेद।

4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

1. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी
2. चरक संहिता सूत्र स्थान महर्षि चरक/श्रुतसंहिता
3. प्रश्नमार्ग नारायण मूर्ति, गदावली, चक्रधर जोशी
4. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी
5. माधव निदान-माधवकर

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र की प्रविधियों का परिचय दीजिए।
2. आयुर्वेद शास्त्र का स्वरुप व प्रयोजन के विषय में लिखिए।
3. ज्योतिष व आयुर्वेद शास्त्र का परस्पर सम्बन्ध को बताएं।

इकाई- 5 रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकरण

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विषय परिचय
5.4 रोग परिज्ञान के उपकरण
5.5 रोग ज्ञान के उपकरण
    5.5.1 स्थान से बननेवाले योग
    5.5.2 भाव से बनने वाले योग
5.6 योग एवं उसके भेद
    5.6.1 स्थान एवं भाव से बनने वाले योग
    5.6.2 स्थान, भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग
    5.6.3 योगों के प्रमुख तीन तत्व
    5.6.4 ग्रह
    5.6.5 रोग विचार में ग्रहों का परिचय
    5.6.6 ग्रहों की राशियाँ
    5.6.7 ग्रहों की उच्च, नीच एवं मूल त्रिकोण राशि
    5.6.8 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध
    5.6.9 ग्रहों के बल
5.7 सारांश
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची / सहायक पाठ्यसामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। जिसका शीर्षक **"रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकरण"** हैं। इससे पूर्व की इकाई में आप ने ग्रह फल के विविध प्रविधियों के बारे में जाना तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि कैसे ग्रहों का प्रभाव जीव-जगत पर पड़ता है। अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे कि रोग एवं रोगी का परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कैसे किया जाता है। और इसके क्या-क्या ज्योतिषीय उपकरण होते हैं ? इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे। साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप-

- ❖ ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय को प्राप्त करेंगे।
- ❖ ज्योतिष में रोग व रोगी के परीक्षण के मुख्य आयामों से परिचित होंगे।
- ❖ साथ ही आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से भी अवगत होंगे।
- ❖ ये जानने का भी प्रयत्न करेंगे कि रोग कैसे उत्पन्न होते हैं।
- ❖ साथ ही विषय वस्तु के प्रायोगिक पक्ष से भी परिचित हो सकेंगे।

5.3 विषय परिचय

हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है, उसे रोग कहते हैं। इन रोगों की उत्पत्ति के कारण, लक्षण भेद एवं शमनोपाय (चिकित्सा) विधि तभी सही तरह से सफल हो पायेगा, जब रोग का परीक्षण सही तरह से कर पायेंगे। आयुर्वेद में भी भगवान घनवनन्तरि ने आचार्य सुश्रुत से कहा, कि रोगी की चिकित्सा शुरू करने से पहिले वैद्य को रोगी की आयु का परीक्षण कर लेना चाहिए। क्यों कि आयु के शेष होने पर ही चिकित्सा द्वारा वह ठीक हो सकता है। यदि आयु शेष हो तो रोग, ऋतु (मौसम) वय, बल एवं औषधि का विचार कर चिकित्सा करनी चाहिए। यही बात ज्योतिष शास्त्र में भी जोर दे कर कही गई है कि आयु का परीक्षण पहले भलीभांति कर लेना चाहिए।

आयुः पूर्वं परीक्षेत् पश्चालक्षणमादिशेत्।
अनायुषाम् तु मर्त्यायांलक्षणै किं प्रयोजनम्।। सु.सं.सूत्रस्थान २५/४/१०
आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना।
स्वस्थमुदिश्य वा प्रश्न एव वातुरमित्यम्।। प्रश्न मार्ग ९/३-५

5.4 रोग परिज्ञान के उपकरण

जैसे कि पूर्व की इकाईयों में भी चर्चा हुई है कि अनुचित कर्म के फल स्वरुप रोग पैदा होते हैं, वे कर्म चाहे इस जन्म के हो या जन्म जन्मान्तरों के। इस जन्म के अनुचित कर्मों को आहार एवं विहार की अनियमितता कह सकते हैं, जब कि जन्मान्तरों के अनुचित कर्मों को परम्पर या अशुभ या पाप कर्म कहा जाता है।

क्योंकि जन्म-जन्मान्तरों से वर्तमान जीवन के आज और भविष्य तक के सभी कर्मों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है, जिसका विस्तृत अध्ययन आप ने पिछली इकाइयों में

किया, फिर भी प्रसंग वश देखिये संचित, प्रारब्ध, एवं क्रियमाण। तथा इन कर्मों के फल को जानने की ज्योतिष शास्त्र में तीन प्रविधियां अविष्कृत एवं विकसित की गयी है। अत: रोगों के परिज्ञान के मुख्यत: तीन उपकरण माने जाते हैं- १. योग २. दशा एवं ३. गोचर। होराशास्त्र की यह मुख्य विशेषता है कि जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का इस जन्म में कब-कब, क्या-क्या और कैसा-कैसा फल मिलेगा? इसको यह शास्त्र ठीक उसी प्रकार साफ-साफ बता देता है, जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थ का ज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादि, योगदशा एवं गोचर की विधी से किया जाता है। लघुजातक में भी कहा गया है- **यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पंक्तिम्। व्यन्जयती शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव।।** (लघुजातक अ.१/श.२)

5.5 रोग ज्ञान के उपकरण ग्रह योग

पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का परिज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादित ग्रह योगों के द्वारा किया जाता है। यथा सूर्य आदि ग्रह मनुष्य के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ये ग्रह अनिष्ट स्थान एवं पाप प्रभाववश अनिष्टकारी हो जाते हैं तब वह शरीर के जिस अंग धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसमें विकार या रोग की सूचना देते हैं। जब वे ही ग्रह इष्ट स्थान एवं शुभ प्रभाववश शुभ हो जाते हैं, तब वे शरीर के उस अंग, धातु एवं दोष आदि के द्वारा आरोग्यता की सूचना देते हैं। इस प्रकार ग्रह योगों के माध्यम से यह शास्त्र विविध शारीरिक एवं मानसिक रोगों का विचार करने की सशक्त एवं समर्थ प्रविधि बताया है।

5.5.1 योग एवं उसके भेद

ग्रह योगों को ज्योतिषीय भाषा में योग कहा जाता है। यह मनुष्य को पूर्वार्जित कर्मों के फल से मिलता है, इसलिए योग कहलाता है। प्रश्न मार्ग में इसका उदाहरण इस प्रकार से मिलता है- **ग्रहाणां स्थिति भेदेन पुरुषान् योजयन्ति हि। फले कर्म समुदभूतेरीति योगा: प्रकीर्तितिता:।** प्रश्न मार्ग अ.९ श्लो. ४८ वस्तुत: योग पूर्वार्जित कर्म को उसके फल से जोड़ने वाला सेतु है। यह योग ग्रहों की राशि एवं भाव में स्थित या परस्पर युति के द्वारा बनता है। ग्रह, राशि एवं भाव इन तीनों तत्वों के द्वारा बनने वाले योग आधार के भेद से सात प्रकार के होते हैं। प्रश्न मार्ग अ. ६ श्लोक ४९-५० यथा- १. स्थान, २- भाव, ३- ग्रह, ४- स्थान, एवं भाव, ५- स्थान एवं ग्रह, ६- भाव एवं ग्रह, ७- स्थान भाव एवं ग्रह।

5.5.2 स्थान से बननेवाले योग

मेष आदिद्वादश राशियों, उनके भेद- (चर, स्थिर, दिस्वभाव, उच्च, नीच-मूलत्रिकोण-स्वराशि एवं शत्रु राशि आदि।) और राशियों के वर्ग (लग्न होरा- द्रेषकाण–सप्तमांश–नवमांश–दशांश–द्वादशांश-त्रिंशंश-षष्ट्य अंश एवं पारिजातादि।) को ग्रहों का स्थान कहा जाता है। इनसे बनने वाले योगों को स्थान से बनाने वाले योग कहा जाता है। जैसे– (अ.) मिथुन लग्न में उत्पन्न व्यक्ति भोगी, बन्धुरत, दयालु धनवान एवं रोगी होता है। (जातक पारिजात अ.९ श्लो.१०६)
(आ.) वृश्चिक के नवमांश में उत्पन्न व्यक्ति दु:खी दरिद्री दुर्बल एवं रोगी होता है। (जा.पा.९/९७)

5.5.3 भाव से बनने वाले योग

जन्म कुण्डली में लग्न से प्रारम्भ कर १२ भाव होते हैं, जिनके नाम हैं- १-तनु २-धन, ३-सहज, ४-सुख, ५- पुत्र, ६-रोग, ७-जाया, ८- मृत्यु, ९-धर्म, १०-कर्म, ११-आय एवं १२

व्यय। इन भावों में से कुछ को केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लीम, त्रिक, त्रिषडाय, मारक, उपचय एवं अनुपचय कहते हैं। इनके द्वारा बनने वाले योगों को भाव से बनने वाला योग कहा जाता है। जैसे-

अ. चन्द्रमा से द्वितीय एवं द्वादश में कोई ग्रह न हो , तो केमद्रुम योग होता है। (वृ.जा.१३/६)

आ. लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो , तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है। (वृ.जा.५/१)

5.6 ग्रहों से बनने वाले योग

होरा शास्त्र ने शुभ एवं अशुभ फल के सूचक नौ ग्रह माने गए हैं। इन ग्रहों की युति से बनने वाले योगों को ग्रह योग कहा जाता है। जैसे-

(अ.) जिसके जन्म के समय चन्द्रमा पूर्णबली तथा पूर्ण कला वाला हो वह राजा बनता है।(जातक पारिजात ७/३८)

(आ.) केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से राजयोग कारक होते हैं ।(लघु पारशरी १४-१५)

5.6.1 स्थान एवं भाव से बनने वाले योग–

जातक ग्रंथों में स्थान एवं भाव से बनने वाले योग पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इन योगों में स्थान एवं भावों का दोनों का समान रूप से महत्व होता है। जैसे-

(अ.) सप्तम स्थान में द्विस्वभाव राशि हो, तो शात्रों द्वारा किये गए अभिचार (तन्त्र क्रिया) से रोग होता है। जा.पा.६/७७

(आ.) दूसरा उदाहरण देखें मेष लग्न में उत्पन्न व्यक्ति बन्धु द्वेषी, दुर्बल शरीर, क्रोधी, मानी, पराक्रमी एवं दुर्बल जानु होता है। जा.पा.९/१०५

5.6.2 भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग–

भाव में ग्रहों की स्थिति या भाव पर ग्रहों की दृष्टि द्वारा बनने वाले योगों को भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग कहा जाता है। इन योगों में भाव एवं ग्रह इन दोनों का सामान महत्व होता है।

उदाहरण –

(अ.) लग्न में मंगल हो और षष्ठेश दुर्वल हो, तो जातक को अजीर्ण गुल्म एवं शूल रोग होता है।

(आ.) पापग्रह एवं राहू के साथ चन्द्रमा ५, ८ या १२ वें भाव मे हो, तो जातक पागल एवं क्रोधी कलह प्रिय होता है।(जा.पा. ६/८३)

5.6.3 स्थान, भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग–

ज्योतिष शास्त्र के होरा ग्रंथों में स्थान, भाव एवं ग्रह इन तीनों का सामान रूप से महत्व होता है। ये तीनों मिलकर विशेष प्रकार के फल की सूचना देते हैं। (अ) कर्क लग्न में चंद्रमा एवं गुरु हो, केन्द्र में बुध एवं शुक्र हो तथा शेष ग्रह त्रिषडाय में हो तो जातक की अमित आयु होती है। (सारावली अ. १०/ ७४)

5.6.4 योगों के प्रमुख तीन तत्त्व–

जीवन के घटनाचक्र, जिसका एक पहलू स्वास्थ्य एवं रोग भी है, इसका विचार करने का मुख्य उपकरण योग है। जातक ग्रंथों में प्रतिपादित योगों में प्रमुख रूप से तीन त्तत्व प्रमुख होते हैं– १-ग्रह, २- राशि, एवं ३- भाव।

ज्योतिषशास्त्र के होरा ग्रंथों में ग्रहशील का निरूपण करते समय ग्रहों की राशि उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री उनकी दृष्टि, उनके षड्बल उनका शुभाशुभ, उनकी षड् अवस्थाओं एवं उनके चतुर्विध सम्बन्ध आदि का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है। इन सबकी जानकारी होरा ग्रंथों से कर लेनी चाहिए। जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, वो होरा ग्रंथों से लिए गये हैं। किसी भी योग चाहे वो भाव से बनने वाला हो या स्थान से उसकी पुष्टता,ग्रहों के या भाव के बलाबल से अवश्य कर लेनी चाहिए। उपरोक्त उपकरण ही प्रमुख हैं रोग व रोगी के परीक्षण हेतु इन उपकरणों के आधार पर हम रोग विषयक तत्वों का पता लगा सकते हैं, कि किसी जातक का कौन सा योग है जो कि रोग उत्पन्न कर सकता है? कोई भी शुभाशुभ योग अपनी भुक्ति (दशा-अन्तरदशा) में ही फल देता है।

ज्योतिष शास्त्र में रोग का विचार करने के लिये जितने योग बताए गए हैं, उनमें तीन त्तत्व प्रधान हैं- १- ग्रह, २- राशि, ३- भाव। अत: ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोगों का विस्तार से विवेचन करने के पूर्व उक्त ग्रह, राशि एवं भाव का विचार अवश्य कर लेना परम आवश्यक है।

5.6.5 ग्रह

ज्योतिष शास्त्र में शुभ एवं अशुभ फल के सूचक कुल नव (९) ग्रह माने गए हैं, जैसे– १- सूर्य, २-चन्द्र, ३-भौम, ४-बुध, ५-गुरु, ६-शुक्र, ७- शनि, ८-राहु, ९- केतु। उक्त ग्रहों में राहू तथा केतू ये दोनों छाया ग्रह हैं। अन्य ग्रहों की भान्ति सौरमंडल में इनका ज्योतिषपिण्ड (चमकीला बिम्ब) दिखाई नहीं देता। शेष अन्य सात ग्रहों के ज्योतिष पिण्ड सौर मण्डल में अपनी-अपनी कक्षाओं में घूमते हुए दिखाई देते हैं। यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रंथों में राहू-केतू को गढ़ नहीं माना गया है तथापि शास्त्र में इनके महत्व को स्वीकार कर इन्हें ग्रहों के साथ सम्मलित किया गया है।

आधुनिक काल में पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने सौरमंडल में हर्शल, नेपच्यून एवं प्लेटो नामक तीन अन्य ग्रहों की खोज की है। पाश्चात्य ज्योतिष ग्रंथों में इन ग्रहों के प्रभाव का भी उल्लेख नहीं है। अत: इस पाठ्यक्रम में केवल नव ग्रहों के आधार पर ही रोग का विचार किया गया है।

5.6.6 रोग विचार में ग्रहों का परिचय-

कौन सा ग्रह किस त्तत्व का प्रतिनिधित्व करता है? उसका कद एवं रंग कैसा है? वह शरीर के किन-किन अंगों को प्रभावित करता है? और वह किन-किन रोगों को उत्पन्न कर सकता है? इन बातों का विचार ज्योतिष ग्रंथों में विस्तार पूर्वक किया गया है। (फलदीपिका मोतीलाल वनारसी दास ,दिल्ली अ.१४/श्लोक ७५-८१)

सूर्य– यह अग्नि तत्त्व तथा माध्यम कद वाला शुष्क ग्रह है। यह मनुष्यों के (पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के बांयें) नेत्र, आयु, अस्थि, शीर्ष, हृदय, प्राण शक्ति, मेदा, रक्त तथा पित्त को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर हड्डियां मजबूत होती है तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है। और इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर क्षय, पित्त प्रकोप नेत्र, अस्थि, शिर, हृदय, उषण वात, ज्वर, मूर्छा, चर्म, मृगी एवं शूल आदि रोग होता है।

चन्द्र– यह जल तत्व तथादीर्घ कद वाला जलीय ग्रह है। यह मनुष्यों के (पुरुषों के बांयें तथा स्त्रियों के दांयें) नेत्र, स्तन, वक्ष, फेफड़ा, मन, मष्तिष्क, उदार, मूत्राशय, रक्त, रस-धातु शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर में रक्त संचार ठीक बना रहता है, आरोगवृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है। इसके निर्बल अशुभ या रोग कारक

होने पर कफ रोग, मूत्र विकार, जलोदर, मुख रोग, नासिका रोग, पाण्डु रोग, क्षय रोग मन्दाग्नि, अतिसार, स्त्रीसंसर्ग जन्य रोग, प्रदर रोग अपस्मार, वात एवं मानसिक रोग।

भौम- यह अग्नि तत्त्व तथा सामान्य कद्वाला शुष्क ग्रह है। यह शरीर के कपाल, कान, स्नायु, जननेंद्रिय, मज्जा, पुठों की पुष्टता, शारीरिक पुष्टता, दाह, शोथ, धैर्य एवं पित्त को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर व्यक्ति के शरीर में हड्डियां मजबूत होती है। यह निर्बल, अशुभ या रोग कारक हो तो रक्त विकार, रक्तचाप, फोड़ा-फुंसी खाज सूजन, चोट, रक्त स्राव, कुष्ठ, अग्निदाह, महामारी, गुप्त रोग, शल्य क्रिया आदि होते हैं।

बुध- यह पृथ्वी तत्व तथा सामान्य कद वाला जलीय ग्रह है। शरीर में यह जिह्वा, वाणी, स्वर चक्र, स्वास्नली, अगल मस्तिष्क, केश, मुख, हाथ, एवं त्रिधातु को प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर बालक का मस्तिष्क पूर्ण विकसित होता है, उसका व्यक्तित्व आकर्षक, तथा प्रतिपादन शैली मोहक होती है। इसके निर्बल या रोग कारक होने पर मूर्छा, हिस्टीरिया, मानसिक रोग चक्कर आना, न्यूमोनिया, विषमज्वर, त्रिदोष ज्वर, इत्यादि रोग होते हैं।

गुरु– यह आकाश तत्व (मतान्तर से वायु तत्व) तथा मध्यम कद (मतान्तर से ह्रस्व कद) वाला जलीय ग्रह है। शरीर में चर्वी, वीर्य, उदार, यकृत, रक्त धमनी, त्रिदोष तथा कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट, होता है, विचार शक्ति अच्छी होती है, तथा मन में शांति होती है। इसके निर्बल होने पर या अशुभ या रोग कारक होने पर उदर विकार, मज्जा दोष, यकृत दोष, प्लीहा, स्थूलता, दंतरोग, वायु विकार, मूर्छा, मस्तिष्क विकार, ज्वर, कर्ण रोग, ऊँचाई से गिरना एवं मानसिक तनाव इत्यादि होता है।

शुक्र– यह जलतत्व तथा मध्यम कद वाला जलीय ग्रह है। शरीर में यह जननेंद्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्ति को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर शुडोल एवं सुन्दर होता है, मनुष्य की काम शक्ति बलवान होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है। इसके निर्बल होने पर या रोग कारक स्थिति में मूत्र जन्य रोग, वीर्य विकार, गुप्त रोग स्त्री संसर्ग जन्य रोग, मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न विकार, विष जन्य विकार, प्रमेह, मधु मेह प्रदर, कफवायु, पाण्डु रोग होता है।

शनि– यह वायु तत्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। यह शरीर में हड्डियां की जोड़, पैर, घुटने, वात, संस्थान, स्नायु संस्थान, मज्जा तथा बात को प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर स्नायुमंडल पुष्ट तथा शरीर सुदृढ़ होता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर वायु विकार स्नायु विकार, जोड़ो का दर्द, गठिया, सन्धिवात, पक्षाघात, पागलपन, डाढ में दर्द, अपचन, खांसी, दमा, अंग-भंग तथा निराशा जन्य मानसिक रोग होते हैं।

राहु- यह वात तत्व एवं मध्यम कद वाला ग्रह है। यह शरीर में मस्तिष्क, रक्त, त्वचा, एवं वात को प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर शरीर में फुर्ती, ताजगी, एवं चैतन्यता बनीं रहती है। तथा इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर चेचक, कृमि मृगी, सर्प दंश, पशुओं से चोट , कुष्ठ, एवं केंसर, जैसे असाध्यरोग हो जाते हैं।

केतु– यह वायु तत्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है। यह शरीर में वात रक्त तथा चर्म को विशेष रूप से प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर शरीर में श्रम शक्ति, संघर्ष शक्ति, प्रतिरोध शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। तथा इसके निर्बल होने पर शरीर में सुस्ती, अकर्मण्यता, शरीर में चोट, घाव, चर्म रोग, जटिल रोग एवं एलर्जी हो जाती है।(प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी . विद्यापीठ)

5.6.7 ग्रहों की राशियाँ–

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य आदि सात ग्रहों को मेष आदि द्वादश राशियों का स्वामी माना गया है। जैसे- सिंह राशि का स्वामी सूर्य, कर्क का चन्द्रमा, मेष तथा वृश्चिक का मंगल, मिथुन एवं कन्या का बुध, धनु तथा मीन का गुरु, वृष तथा तुला का शुक्र और मकर तथा कुम्भ राशि का स्वामी शनि होते है। परवर्ती कुछ आचार्यों ने राहु को कन्या राशि तथा केतु को मीन राशि का स्वामी माना जाता है।

5.6.8 ग्रहों की उच्चनीच एवं मूल त्रिकोण राशि–

सूर्यादि ग्रहों की उच्च राशियाँ मेष-वृष-मकर-कन्या-कर्क-मीन-तुला-मिथुन एवं धनु मानी गई है। इन ग्रहों की नीच राशियों में भी परमोच्च तथा परम नीच के अंश इस प्रकार हैं– सूर्य परमोच्च मेष के १० अंश पर,चन्द्रमा का वृष के ३ अंश पर मंगल का मकर के २८ अंश पर, बुध का कन्या के १५ अंश पर, गुरु का कर्क के ५ अंश पर शुक्र का मीन के २७ अंश पर, शनि का तुला के २० अंश पर, राहू का धनु के १५ अंश पर तथा केतू मिथुन के १५ अंश पर परम नीच होता है। किन ग्रहों को किन राशियों के कितने अंश पर मूलत्रिकोण माना गया है-
आईये समझते हैं-

ग्रह	मूलत्रिकोण राशि एवं अंश
सूर्य -	सिंह राशि में १ से २० अंश तक
चन्द्र -	वृष राशि में ४ से ३० अंश तक
मंगल –	मेष राशि में १ से १२ अंश तक
बुध –	कन्या राशि १६ से २५ अंश तक
गुरु –	धनु रशी में १ से २० अंश तक
शुक्र –	तुला राशि में १ से २० अंश तक
शनि -	कुम्भ राशि में १ से २० अंश तक

पूर्वाचार्यों ने राहु एवं केतु को छायाग्रह मानकर उनकी मूल त्रिकोण राशि या स्वराशि नहीं मानी है। किन्तु परवर्ती आचार्यों ने कुम्भ राशि में राहू का मूल त्रिकोण माना है।[जातक पारिजात अ.१ श्लोक२८]

5.6.9 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध-

ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध दो प्रकार से माना गया है-

(१) नैसर्गिक सम्बन्ध

(२) तात्कालिक सम्बन्ध

(वृहत्जातक २/१७-१८)

नैसर्गिक दृष्टि से ये निकटता एवं दूसरी के आधार पर मित्र एवं शत्रु माने जाते हैं। नैसर्गिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता, शत्रुता एवं उदासीनता इस प्रकार से हैं-

सूर्य- इसके चन्द्रमा, मंगल एवं गुरु मित्र हैं। शुक्र एवं शनि शत्रु हैं। तथा बुध सम हैं।

चन्द्र– इसके सूर्य तथा बुध मित्र हैं। राहू शत्रु है और मंगल, गुरु, शुक्र, शनि, सम है।

भौम- सूर्य, चन्द्र, गुरु, मित्र हैं, बुध एवं राहू मित्र हैं। शुक्र एवं शनि सम हैं।

बुध- इसके सूर्य, शुक्र मित्र है, चन्द्रमा शत्रु हैं। तथा मंगल, गुरु, शनि सम है।

गुरु- सूर्य, चन्द्र एवं मंगल मित्र हैं। बुध एवं शुक्र शत्रु हैं। तथा गुरु सम है।

शुक्र- बुध, शनि मित्र हैं। सूर्य एवं चन्द्र शत्रु हैं। मंगल एवं गुरु सम।
शनि– बुध एवं शुक्र मित्र हैं। सूर्य चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं। गुरु सम है।
राहू– इसके बुध, शुक्र, मित्र हैं सूर्य, चन्द्र, मंगल, शत्रु हैं। तथा गुरु सम है।
केतू- इसके बुध, शुक्र, शनि मित्र हैं। सूर्य, चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं।

तत्कालिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता का ज्ञान उनकी निकटता एवं दूरी के आधार पर मानी जाती है। किसी भी ग्रह से २/३/४/१०/११ एवं १२ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर मित्र होते हैं तथा। १/५/६/७/८ एवं ९वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर शत्रु होते हैं एक राशि में साथ-साथ रहने पर ग्रहों में युद्ध भी होता है।[सूर्य सिद्धांत ग्रह्युत्याधिकार श्लोक १,२०-२३] अत: एक राशि में रहने वाले ग्रह, अत्यन्त निकट होने पर भी परस्पर शत्रु होते हैं।

नैसर्गिक एवं तात्कालिक सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों की आपसी सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों का आपसी सम्बन्ध ५ प्रकार का हो जाता है- १- अति मित्र, २- मित्र, ३- सम, ४- शत्रु एवं ५- अति शत्रु जो ग्रह नैर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में स एक में मित्र तथा अन्य में सम होते हैं, आपस में मित्र कहे जाते हैं। जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं, आपस में सम कहलाते हैं। जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं, आपस में सम कहलाते हैं। जो ग्रह नैसर्गिक तथा तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से शत्रु था दूसरी दृष्टि से सम होतें हैं, परस्पर शत्रु माने जाते हैं। और जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों से आपस में शत्रु होते हैं, वे परस्पर अतिशत्रु कहलाते हैं।

महर्षि पराशर ने ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक मित्रता-शत्रुता के अलावा उनकी युति-दृष्टि आदि के आधार पर अन्य चार प्रकार के सम्बन्ध माने हैं जो इस प्रकार हैं- १. युति सम्बन्ध २. दृष्टि सम्बन्ध, ३. स्थान सम्बन्ध एवं ४. एकांतर सम्बन्ध। एक राशि एवं एक ही भाव में साथ-साथ बैठने वाले ग्रहों में युति सम्बन्ध होता है आपस में एक दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है। तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है। तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठा हो और दूसरे सम्बन्ध होता उसे देखता हो तो उनमें एकांतर सम्बन्ध होता है। इन चार प्रकार के सम्बन्धों को सम्बन्ध चतुष्टय कहते हैं।

ये चार प्रकार के सम्बन्ध ग्रहों में सहयोग या पूरक भाव के सूचक होते हैं। तथा इन संबंधों के प्रभाव वश दोषयुक्त या निर्बल ग्रह भी बलवान होकर कारक या मारक बन जाते हैं।[लघुपाराशरी अ.२ श्लोक १]

ग्रहों की दृष्टि- ग्रहों की दृष्टि दो प्रकार की होती है। १- साधारण दृष्टि या पाद दृष्टि तथा २- विशेष दृष्टि। प्रत्येक ग्रह जिस स्थान पर बैठा हो, उससे तीसरे तथा १०वें स्थान को एक पाद दृष्टि से ५वें तथा ९वें स्थान को द्विपाद दृष्टि से देखता है।[लघु पाराशरी २/१] इस प्रकार ग्रह जिस स्थान में बैठा हो, उससे १/२/६/११ एवं १२ वें स्थान को छोड़कर शेष स्थानों पर उसकी साधारणतया दृष्टि रहती है। किनती सप्तम स्थान पर प्रत्येक ग्रह की पूरण दृष्टि रहती है। सूर्यादि ग्रहों में से मंगल, गुरु एवं शनि ये तीन इस प्रकार के हैं, जो सप्तम के अलावा अन्य स्थानों को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, यथा मंगल, ७वें स्थान के साथ-साथ चतुर्थ स्थान एवं आठवें स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखता है। इसके अलावा गुरु ५वें और ९वें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है तथा शनि सप्तम के

साथ-साथ तृतीय और दशम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। ग्रहों की साधारण प्रभाववश तथा पूर्ण दृष्टि का प्रभाव होता है।

5.6.10 ग्रहों के बल–

ग्रहों के बल छ: प्रकार के माने गये हैं- १- स्थान बल, २- दिग बल, ३- काल बल ४- चेष्टा बल, ५- दृग बल, ६- नैसर्गिक बल।(जातक पारिजात २/३८)

(१) स्थान बल– जो ग्रह अपनी राशि, उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि में हो वह स्थान बलि कहलाता है। अपने नवमांश, द्रेषकाण, या पारिजातादि वैशेषिक वर्ग में स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है। अष्टक वर्ग मं जिस राशि पर ४ से अधिक रेखाएं हो, वाहन स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कतिपय राशि या स्थान पर ग्रह के स्थित हो जाने पर उसे बल मिलता है। इस प्रकार के बल को स्थान बल कहते हैं।

(२) दिग बल– दिशा में स्थित होने वाले प्राप्त बल को दिग बल कहते हैं। जन्म कुंडली में लग्न पूर्व को, दशम दक्षिण को, सप्तम पश्चिम को, तथा चुर्थ भाव उत्तर को सूचित करता है। इसी प्रकार बुध गुरु पूर्व में, सूर्य, मंगल दक्षिण में, शनि पश्चिम में, चन्द्रमा शुक्र उत्तर में बली होते हैं। लग्न में बुध गुरु, दशम में सूर्य मंगल, सप्तम में शनि, तथा चतुर्थ में चन्द्रमा एवं शुक्र दिगबल के कारण बलवान कहलाते हैं।

(३) काल बल– समयानुसार प्राप्त होने वाला बल काल बल कहलाता है। जैसे– चन्द्रमा, मंगल, शनि, रात्रि में बली कहलाते हैं सूर्य, गुरु, शुक्र दिन में, तथा बुध दिन रात दोनों में बली होता है। सभी ग्रह अपने–अपने काल, होरा में अपने वर्ष में (जिसमें वर्षेश हो), अपने मास में तथा अपने दिन में बली होते हैं। इसके इतर शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में तथा पाप ग्रह कृष्ण पक्ष में बली होते हैं।

(४) चेष्टा बल– सूर्य, चन्द्र उत्तरायण में (मकर से मिथुन तक छ: राशियों) में बलवान होते हैं। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ये यदि ग्रह युद्ध में विजयी हो, वक्र गति हो या चन्द्रमा के स्थ हो तो चेष्टा बली कहलाते हैं।

(५) दृग्बल- दृष्टि के प्रभाव वश प्राप्त होने वाले बल को दृग्बल कहते हीं। जिन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो वे दृग्बल कहलाते हैं। और जिन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो वे निर्बल कहलते हैं।

(६) नैसर्गिकबल- ग्रहों के स्वाभाविक बल को नैसर्गिक बल कहते हैं। इस दृष्टि में सूर्य सर्वाधिक बली होता है। शनि से मंगल, मंगल से बुध, बुध से गुरु, गुरु से शुक्र, शुक्र से चन्द्रमा और चन्द्र से सूर्य निसर्गत: बली होता है।

ग्रहों का शुभाशुभत्व- सामान्यतया ग्रह दो प्रकार के होते हैं- १. शुभ, तथा २. पाप। जो ग्रह मनोनुकूल फल देते हैं, वे शुभ तथा जो मन के प्रति कूल फल देते हैं वे पाप ग्रह कहलाते हैं।

शुभ ग्रह- गुरु एवं शुक्र ये दोनों पूर्ण शुभ ग्रह हैं। पूर्ण चन्द्रमा तथा शुभ ग्रह से युक्त बुध भी शुभ माना जाता है। इस प्रकार अधिकतम ४ ग्रह शुभ माने गये हैं- १- गुरु, २-शुक्र, ३-पूर्ण चन्द्रमा एवं ४- शुभ ग्रह युक्त बुध।

चन्द्रमा का शुभाशुभत्व- शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा पूर्ण रहता है। इस पूर्ण चन्द्र को शुभ ग्रह माना जाता है, तथा कृष्ण पक्ष की एकादशी से लेकर शुक्ल पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा क्षीण माना जाता है। क्षीण चन्द्र को पाप ग्रह माना जाता है। शेष दिनों में चन्द्र मध्यम होता है, यह मध्यम चन्द्रमा शुभ एवं अशुभ दोनों फल देता है।

पाप ग्रह- सूर्य, मंगल, शनि, राहू एवं केतू ये पाँच ग्रह पाप ग्रह कहलाते हैं। इसके अलावा क्षीण चन्द्र तथा पाप ग्रहों से युत बुध भी पाप ग्रह कहलाता है। पाप ग्रहों की संख्या सात हो जाती है- सूर्य, मंगल, शनि, राहू, केतू क्षीण चन्द्र, पाप युक्त बुध। इन पाप ग्रहों में से सूर्य और मंगल को क्रूर ग्रह भी कहते हैं।

ग्रहों की अवस्था- महर्षि पाराशर ने ग्रहों की फल देने की क्षमता का मूल्यांकन करने के लिए उनकी अवस्थायें मानी हैं- १- बाल्यावस्था, २- कुमार अवस्था, ३- युवा अवस्था, ४- वृद्धा अवस्था, ५- मृता अवस्था। विषम राशियों में १ से ६ अंश तक स्थित ग्रहों की वाल्या अवस्था होती है, ७ से १२ अंश तक स्थित ग्रह कुमार अवस्था, १३ से १८ अंश तक स्थित ग्रह की युवावस्था, १९ से २४ अंश तक स्थित वृद्धा अवस्था तथा २५ से ३० अंश तक स्थित ग्रह की मृतावस्था होती है। सम राशियाँ में इसके विपरीत १-६ अंश तक मृतावस्था, ७-१२ अंश तक वृद्धावस्था, १३-१८ अंश युवावस्था, १९-२४ अंश तक कुमारावस्था, २५-३० बाल्यावस्था होती हि। (वृहत् पराशर होरा शास्त्र ग्रह अवस्थाध्याय)

बाल्यावस्था का ग्रह कुछ फल देता है। कुमारावस्था का ग्रह आधा फल तथा युवावस्था का ग्रह पूर्ण फल देता है। वृद्धावस्था का ग्रह दुष्ट फल एवं मृतावस्था का अनिष्ट कारक माना गया है–

फलं तु किन्चिद्वितनोति बालास्चार्द्ध कुमारो यतते च पुंसाम्।
युवा समग्रं खचारोऽथ वृद्धः फलं च दुष्टं मरणम् मृताख्यः।। वृ. पा. हो. शा.

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वाल, कुमा, युवा, अवस्थावों में ग्रह के मौलिक प्रभाव (फल) में उतरोत्तर वृद्धि होती है। वृद्धावस्था में उसका प्रभाव घटता है, और मृतावस्था में वह प्रभाव हीन हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. रोग परिज्ञान के कितने उपकरण हैं?
2. भाव कितने होते हैं?
3. राशियाँ कितनी होती है?
4. गोचर कितने प्रकार का होता है?

5.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि कौन-कौन से रोग ज्ञान के ज्योतिषीय उपकरण हैं साथ ही ये भी जाना कि ग्रह कब रोग कारक होता है। तथा साथ ही ग्रहों के बलाऽबल के सम्बन्ध में भी जाना कि ग्रह किन-किन स्थितियों में बलवान और निर्बल होंगे और बलवान ग्रह कैसा फल देगा, निर्बल ग्रह कैसे फल देगा। आशा है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप रोग-परिज्ञान के सिद्धांतों को भली-भांति समझकर रोगों का निर्णय व परिज्ञान कर पायेंगे।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 3
2. 12
3. 12
4. 2

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

1. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

सहायक पाठ्य सामग्री-

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003
2. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3. जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
4. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
6. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
7. चरक संहिता सूत्र स्थान/सुश्रुत संहिता
8. प्रश्नमार्ग/माधव निदान
9. गदावाली/ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी
10. ज्योतिष तत्व
11. भारतीय ज्योतिष (नेमि चन्द्र शास्त्री)
12. मन्त्र साधना द्वारा ग्रह चिकित्सा (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
13. ज्योतिष एवं रोग (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
14. रोगों का सम्भावित काल (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- रोग ज्ञान की प्राविधि क्या है? सविस्तार पूर्वक वर्णन करें।
2- हरों का बलाबल क्या है? स्पष्ट कीजिए।
3- ग्रहों की अवस्था कितनी होती है? उनका फल सहित उल्लेख कीजिए।
4- योग क्या है व कितने प्रकार का होता है? स्पष्ट कीजिए।

खण्ड-दो (Section-B)
आयुर्वेद एवं रोग विचार

इकाई- 1 रोग परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 विषय परिचय
1.4 रोगों के कारण व भेद
1.5 रोगों का वर्गीकरण
    1.5.1 सहज रोग
    1.5.2 जन्मान्ध और ग्रह योग
    1.5.3. जन्मजात बधिरता
    1.5.4 जड़ता (मानसिक पिछडापन)
1.6 दृष्टि निमित्यजन्य रोग
    1.6.1 महामारी
    1.6.2 अदृष्ट निमितत्यजन्य रोग
    1.6.3 अभ्यास प्रश्न
1.7 सारांश
1.8 पारिभाषिक शब्दाबली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक पाठ्यसामग्री
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। जिसका शीर्षक **"रोग परिचय"** है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ग्रह के रोग कारक व रोगों को जानने की विविध प्रविधियों के बारे में जाना तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि कैसे ग्रह रोगों की सूचना देते हैं तथा उनका प्रभाव जीव जगत पर कैसे पड़ता है? आदि विषयों के बारे में विस्तृत रूप से जाना। अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे कि रोग क्या है? और शास्त्र में किस प्रकार से इसके विषय में बताया गया है, इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे। साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप-

- ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- ज्योतिष में रोग के मुख्य आयामों से परिचित होंगे, साथ ही शास्त्र में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से भी अवगत होंगे।
- ये जानने का भी प्रयत्न करेंगे कि रोग क्या है? कैसे उत्पन्न होते हैं? साथ ही विषय वस्तु के प्रायोगिक पक्ष से भी परिचित हो सकेंगे।

1.3 विषय परिचय

मानव के शरीर व मन में होने वाले विकार जिनसे दुःख मिलता है, उसे रोग कहते हैं, इसको अनेकों नामों से जाना जाता है। जैसे- रोग, रुजा, बीमारी, मनोव्यथा व्याधि, आधि एवं रूग-रुज-चोपतापरोगव्याधिगदामया:। अमर कोष २/६/११ व्याधि शब्द वस्तुत: रोग का ही पर्याय है। आचार्य अमरसिंह ने अमरकोश में आधि-व्याधि दोनों शव्दों को अलग-अलग रूप से परिभाषित किया है, वही बात चरक संहिता में भी आचार्य चरक कहते हैं कि आधि मानसी व्यथा है, आमय, गद् आतंक, यक्ष्मा ज्वर, ताप, विकार, ये सब रोग के पर्याय शव्द हैं- अतव्याधिरामयोरगद आतंको यक्ष्मा ज्वरो विकारो रोग:। (च.सं.निदान.१/५) सामान्य रूप से यदि कहें तो जिससे विविध दुःख मिलते हो उसे व्याधि कहते हैं। (सु.सं.१/२३) अंग्रेजी भाषा में व्याधि को Disease (डिसीज) के रूप में परिभाषित है। यहाँ Disease शव्द में Dis शब्द का अर्थ व्यवधान, भंग से है, तथा Ease शब्द का प्राकृतिक कर्म से तात्पर्य है, आर्थात प्राकृतिक कर्म में व्यवधान ही व्याधि है, प्राकृतिक कर्म से तात्पर्य है कि यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति अस्वस्थ होता है, या स्वस्थता में कोई व्यवधान होता है तो वह, व्यवधान ही व्याधि है। अब बात करें की पूर्व में आधि शब्द आया उसका तात्पर्य है मानसिक तनाव, मानसिक अस्वस्थता, मन की पीड़ा, प्रत्याशा, बन्धन, भय इत्यादि। इसी क्रम में आमय शव्द है इसका तात्पर्य भी मनोव्यथा, बीमारी है। हमारे संस्कृत वांग्मय साहित्य में भी कुछ इस प्रकार की चर्चा आती है रघुवंश महाकाव्य (१९/४८) में प्रसंग आता है- **"आमयस्तु रतिरागसम्भव:"।** इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम नाटक (३/११) में भी **"मनोगतामाधिहेतुम"** कहा गया है। अब प्रश्न आता है किस को रोग हो सकते हैं तो नीतीशतक (३/३५) में आचार्य भर्तृहरि कहतें हैं- **"भोगे रोग भयम्"** आर्थात अति भोग से भी रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिए कहते हैं कि अति सर्वत्र वर्जयेत।

1.4 रोगों के कारण व भेद

असात्म इन्द्रिय संयोग, प्रज्ञापराध, परिपाक ये तीन प्रमुख रोगों के कारण आचार्य चरक ने माने हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का अपने विषयों के साथ, हीन, अधिक, एवं मिथ्या संयोग असात्मइन्द्रियार्थ संयोग कहा जाता है। जैसे- आँखों से बिलकुल न देखना 'हीनयोग'' अधिक देखते रहना, योग एवं सूर्यको अधिक प्रकाश में देखना तथा अल्प प्रकाश में पढ़ना मिथ्या योग है। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय का जानना चाहिए। प्रज्ञापराध कहते हैं- धी, धृति, स्मृति, का सम्यक कार्य न करना। परिपाक का अर्थ है, पूर्वजन्म में जो हमने असत (अशुभ) कार्य किये हैं उनके अशुभ परिणामों (फलों) को भोगने हेतु वर्तमान जन्म में रोगों से युक्त होना। चरक ने शारीरिक, मानसिक एवं आगुन्तक रोग भूत (ग्रह) विष, दूषितवायु, अभिघातज, शस्त्र प्रहार आदि से उत्पन्न होते हैं। (च.सू.११) इसी क्रम में कायचिकित्सा, स्त्री रोग, बाल रोग, शल्य चिकित्सा एवं वाजीकरण (संतानप्राप्ति) ये आठ अंग चरक ने चिकित्सा के लिए माने हैं। (च.सू.३०/२८) मानव के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, लाभ-हानि, रोग–शोक आदि में पूर्वजन्म–जन्म जन्मान्तरों के कर्मों का अवश्यमेव प्रभाव पड़ता है, क्यूंकि **"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"।** ज्योतिष शास्त्र शुभाशुभ कर्मों के परिपाक का अध्ययन कर मनुष्य को सचेत करता है। जैसे कि आचार्य वाराहमिहिर ने कहा है– **"यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पंक्तिम्"। व्यन्जयति शास्त्रमेतत त्तमसि द्रव्याणि दीप इव।।** (लघु जातक १/२) मानव के अशुभ कर्मों के आधार पर होने वाले आकस्मिक दुर्घटनाओं, शारीरिक, दुर्बलता एवं रोगों का विश्लेषण ज्योतिष शास्त्र करता है। क्यूंकि **जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।** केवल आहार-विहार की अनियमितता ही रोगोत्पत्ति का कारण नहीं अपितुपूर्वार्जित कर्म भी साध्यासाध्यता रोगों की उत्पत्ति के कारण है– **"कर्मप्रकारेण कदाचिदेकेदोष प्रकोपेणभवन्ति चान्ये। तथापरे प्राणीषू कर्मदोषप्रकोपजा: कायमनोविकारा:"।।** इस प्रकार कर्म सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए जन्मकुंडली के आधार पर रोगोत्पति के कारण, लक्षण व निवारण का विश्लेषण करके मानव के दुःख विघातक व पुरुषार्थ साधक बनने में ज्योतिषशास्त्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1.5 रोगों का वर्गीकरण

रोगों की भली-भान्ति विचार करने से पूर्व उनके भेद-उपभेदों को जानने के लिए उनका वर्गीकरण करना आवश्यक है। फलित शास्त्र के आचार्यों ने रोगों को दो प्रकार का माना है। 1. सहज 2. आगुन्तक।

सहज का अर्थ है जन्म के साथ। अर्थात जन्मजात रोगों को सहज रोग कहते हैं। और जन्म के बाद जीवन में पैदा होने वाले रोग आगुन्तक रोग कहलाते हैं। सहज रोगों के दो भेद होते हैं- १. शारीरिक तथा २. मानसिक। जन्म से ही लूलापन, लंगड़ापन, कुबडापन, अंधत्व, काणत्व, मूकता, बधिरता, नपुंसकत्व, हीनांग, अधिकांग एवं विकलांग आदि को सहज (जन्मजात) शारीरिक रोग कहते हैं। और जन्म से ही जड़ता, सनक, पागलपन एवं मानसिकता पिछड़ापन आदि सहज मानसिक रोग कहलाते हैं।

जन्म के बाद जीवन में पैदा होने वाले आगुन्तक रोग भी दो प्रकार के होते हैं- 1. दृष्टि निमितिजन्य एवं 2. अदृष्टनिमितजन्य। जिन रोगों का निमित (कारण) साफ-साफ दिखाई देता है, उन रोगों को दृष्टि निमितजन्य कहते हैं। उदाहरणार्थ- शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं

दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष कारणों से उत्पन्न रोगों को दृष्टिनिमितजन्य रोग कहा जता है। और जिन रोगों का कारण प्रत्यक्ष घटना न होकर बाधक ग्रह हो, उन रोगों को अदृष्ट निमितजन्य रोग कहते हैं। अदृष्ट का अर्थ देव है, जो पूर्वार्जित कर्मों का परिणाम होता है। इसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले रोगों को अदृष्टनिमितजन्य रोग भी शरीरिक एवं मानसिक भेदों से दो प्रकार के होते हैं।

रोग = आगन्तुक, सहज
सहज = शारीरिक, मानसिक
आगन्तुक = दृष्टि निमितिजन्य, अदृष्ट निमितजन्य
दृष्टि निमितिजन्य = शारीरिक, मानसिक
अदृष्टनिमितजन्य = शारीरिक, मानसिक

1.5.1 सहज रोग

जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले सहज रोगों का कारण जातक का पूर्वजन्म कर्म और उसके माता-पिता का अनुचित आचार होता है। अत: फलित शास्त्र में जन्म जात रोगों का विचार जन्म कुण्डली एवं गर्भाधान कुण्डली द्वारा किया जाता है।

होरा ग्रंथों में लूलापन, लंग्डापन, कुबड़ापन, पंगुता, अंधापन, कनापन, मूकता, बधिरता, नपुंसकता, हीनांग, अधिकांग एवं जड़ता आदि अनेक जन्मजात रोगों का ग्रह योगों के आधार पर विचार एवं विवेचन किया गया है। यहाँ इन जन्मजात रोगों का ग्रह योगों के आधार पर विचार एवं विवेचन किया गया है। यहाँ इन जन्मजात रोगों में से कुछ प्रमुख रोगों का विचार किया जा रहा है।

1.5.2 पंगुता (पोलियो)

प्राय: जिन बच्चों के एक या दोनों पैर जन्म से ही चले फिरने के लायक नहीं होते ऐसे बचों को पंगु कहा जाता है। बहुधा इनके पैर टेड़े-मेडे होते हैं। उनकी बनावट में विकार उनके सही ढंग से विकास न होने के कारण होता है। पैर में विकलांगता के सूचक अनेक योग जातक ग्रंथों में समाहित है, उनमें से कुछ का विचार आधान कुण्डली से और कुछ का विचार जन्म कुण्डली से होता है। जैसे–

यदि गर्भाधान कुण्डली में मीन लग्न हो और उस पर चन्द्रमा मंगल शनि की दृष्टि हो, तो गर्भस्थ शिशु के पैर में विकलता रहती (आती) है। जन्म कुण्डली में में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक पंगु होता है। वृहज्जातक (४/१८) मीन, वृश्चिक, मेष, कर्क या मकर राशि में पाप ग्रह के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो। पंचम, एवं नवम स्थान में पाप ग्रहों के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो। शनि एवं षष्ठेश ये दोनों १२वें भाव में हो और इन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो। षष्ठ स्थान में शनि–सूर्य एवं मंगल के साथ हो। उपरोक्त ये योग विक्लांगता या पंगुता जातक में ला सकते हैं।

विशेष- मीन राशि एवं द्वादश (१२) वाँ भाव पैरों का प्रतिनिधित्व करता है। ग्रहों में चन्द्रमा बाल्यावस्था का तथा शनि पैरों का सूचक होता है। अत: मीन राशि तथा द्वादशभाव, शनि एवं चन्द्रमा का षष्ठ स्थान या पाप प्रभाव में होना पैरों में विकार की सूचना देता है। परिणामत: ऐसा जातक जन्म से चलने-फिरने के लायक नहीं होता।

1.5.2 जन्मान्ध और ग्रह योग

जो व्यक्ति जन्म से अन्धा होता है, उसे जन्मान्ध कहते हैं। जातक ग्रंथों में जन्मान्ध के सूचक अनेक योग बताए गये हैं, उनमें से कुछ योग आधान कुण्डली और कुछ जन्मकुण्डली से होते हैं। आधान कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक जन्मान्ध होता है–

सिंह लग्न में सूर्य,एवं चन्द्रमा हो और उनमें एवं शनि की दृष्टि हो।

द्वादश स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा हो।

द्वितीयेश मंगल-सूर्य एवं चन्द्रमा से 8 वें स्थान में हो और शनि छटवें या बारह वें स्थान में हो।

छटे एवं बाहरवें स्थान में पाप ग्रह हो।

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक जन्मान्ध होता है-

सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश 6-8 या 12 वें भाव में हो।

लग्न में ग्रहण कालीन सूर्य हो त्रिकोण में शनि एवं मंगल हो।

सूर्य एवं शुक्र के साथ लग्नेश त्रिक में हो।

लग्न से दूसरे भाव में मंगल, छठे चन्द्रमा, आठवें सूर्य एवं बाहरवें भाव में शनि हो।

जन्मजात मूकता और उसके ग्रह योग– जन्म से गूंगेपन को जन्मजात मूकता कहते हैं। इसका भी विचार आधान एवं जन्म कुण्डली दोनों से किया जाता है। आधान कुण्डली में यह योग जन्मजात मूकता का सूचक है- वृष राशि में चन्द्रमा और सब पाप ग्रह भसन्धी में हों।

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो, बालक जन्म से ही गूंगा होता है–

कर्क वृश्चिक या मीन में स्थित बुध को अमावस्या का चन्द्रमा देखता हो।

षष्ठेश एवं बुध –दोनों लग्न में हो।

षष्ठेश एवं गुरु- दोनों लग्न में हो।

धनेश एवं गुरु– दोनों त्रिक में हो।

फलित शास्त्र में वृष राशि एवं द्वितीय भाव वाणी का प्रतिनिधित्व करता है। चन्द्रमा बाल्यावस्था का, बुध वानी का और गुरु प्रतिपादन शक्ति का सूचक होता है। अत: इनका रोग भाव एवं रोगेश से सम्बन्ध तथा इस पर पाप प्रभाव वानी के विकार का सूचक होता है।

1.5.3 जन्मजात बधिरता

कानों से सुनाई न पड़ने को बधिरता या बहिरापन कहते हैं। यह जन्मजात भी होती है और जन्म के बाद भी। जन्मजात बधिरता का विचार आधान एवं जन्मकुडली से होता है। यदि आधान या जन्मकुंडली में निम्नलिखित योग हो तो बालक जन्म से बहिरा होता है।

पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न, तृतीय या एकादश भाव में हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

पंचम एवं नवम भाव में स्थित पाप ग्रहों पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

शनि से चतुर्थ में बुध और षष्ठेश त्रिक स्थान में हो।

षष्ठेश एवं बुध पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

पूर्ण चन्द्र एवं शुक्र ये दोनों शत्रु ग्रहों के साथ हो।

रोगों में मूकता एवं बधिरता अन्योन्याश्रित होती है। जो बालक गूंगा होता है, वह बहिरा भी होता है। क्यूँकी बहिरापन के कारण सुनाई न पड़ने से वह बोलना सीख नहीं पाता इसी समानता के कारण मूकता एवं बधिरता का कारक बुध को माना जाता है। प्रकारांत से शनि भी बधिरता को उत्पन्न करता है। कुण्डली में तृतीय एवं एकादश स्थान कानों का प्रतिनिधित्व करते

हैं। अत: इन पर पाप प्रभाव और इनका रोग भाव या रोगेश से संपर्क बधिरता का उत्पादक माना जाता है।

1.5.4 जड़ता (मानसिक पिछडापन)

मानसिक रूप से पिछड़ेपन को जड़ता कहते हैं। इससे बालक का न केवल बौद्धिक विकास अवरुद्ध होता है, अपितु वह शारीरिक विकास में भी पिछड़ जाता है। ऐसे बालक का बौद्धिक अंक (आईक्यू) सामान्य से काफी नीचे होता है। और शारीरिक एवं मानसिक शक्ति कमजोर तथा बौद्धिक शक्ति निम्न बिंदु पर स्थिर सी होती है। अन्य जन्मजात रोगों की भान्ति जड़ता का विचार भी आधान कुण्डली एवं जन्म कुण्डली दोनों से किया जाता है। जड़ता से सम्बंधित कुछ योग इस प्रकार है-

यदि आधान कुण्डली में चन्द्रमा पाप ग्रहों के साथ भसन्धी राशियों में हो और उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।

जन्म कुण्डली में अगर निम्नलिखित योग हो तो, बालक जन्म से ही जड़ होता है, या मानिक रूप से जड़ होता है।

लग्न में सूर्य 12वें चन्द्रमा एवं त्रिकोण में मंगल हो।

लग्न में सूर्य, त्रिकोण में चन्द्रमा और तीसरे स्थान में गुरु हो।

केन्द्र में चन्द्रमा एवं शनि हो और इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।

केन्द्र में चन्द्रमा एवं शनि हो और इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।

द्वितीय स्थान में सूर्य एवं गुलिक हों इनको पाप ग्रह देखते हो या तृतीयेश शनि के साथ हो।

पंचम में शनि हो और लग्नेश पर शनि की दृष्टि हो या पंचमेष पाप ग्रहों के साथ हो।

विशेष- चन्द्रमा मन का, सूर्य विकास का तथा शनि मंदता/जड़ता का प्रतीक होता है। कुण्डली में चतुर्थ भाव मन का, पंचम बुद्धि का एवं नवम विकास का प्रतिनिधितत्व करता है। अत: इन पर पाप प्रभाव होने से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में अवरोध पड़ने से मानसिक पिछडापन हो जाता है।

1.6 दृष्टि निमित्यजन्य रोग

चोट, दुर्घटना, संसर्ग, महामारी, भय, शाप एवं अभिचार जैसे प्रत्यक्ष कारणों से पैदा होने वाले रोग दृष्टिनिमित्यजन्य कहलाते हैं। दृष्टि जन्य का मतलब होता है जो दिखाई पड़ने वाले कारणों से प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं, उन रोगों को दृष्टि निमितजन्य रोग कहते हैं। इन रोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि ये अकस्मात पैदा होते हैं। इसलिए इन्हें आकस्मिक रोग कहा जाता है। आकस्मिक व्याधियों का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह मंगल माना जाता है। और राहू, केतू तथा अन्य पाप ग्रह उसके सहयोगी माने गए हैं। इस शास्त्र के आचार्यों का स्पष्ट कथन है कि "अग्नि, विष एवं शास्त्र से पीड़ा, दुर्घटना, विस्फोट, युद्ध, महामारी, राक्षस एवं घोर ग्रहों से भय, शत्रुता विनाशकारी इच्छा और मरण आदि अभिचारों का प्रतिनिधित्व मंगल करता है।" फलदीपिका १३/०४

चोट, दुर्घटना, महामारी, विस्फोट, भय, शाप एवं अभिचार की प्रवृत्ति में व्यक्ति या प्रकृति का उग्रतम्, विरोध हो जाता है और वह उग्र रूप धारण कर लेता है, तभी शाप घात, या अभ्इचार का आश्रय लिया जाता है। इसी प्रकार जब प्रक्रिति उग्ररूप धारण कर लेती है, तब महामारी दुर्घटना एवं उत्पात होते हैं। कुण्डली में स्वविरोध और विरोधी का प्रतिनिधि भाव षष्ठ

भाव है। इसलिए दृष्टि निमितिजन्य या आकस्मिक रोगों का विचार षष्ठभाव, षष्ठेश, षष्ठ स्थान में स्थित या षष्ठ स्थान को देखने वाले ग्रह से किया जाता है। **"शापाभिचारघातादिजाता: दृष्टिनिमितिजा:। ज्ञेया: षष्ठतदीशाभ्यां तद्दृष्टा: तद गतेन वा।।**

1.6.1 महामारी

प्राकृतिक प्रकोप से फैलने वाली बीमारीयों को महामारी कहते हैं। ये विमारियां एक साथ एक क्षेत्र में फैलती है और अचानक वहाँ के निवासियों में फ़ैल जाती है। ऐसी विमारियों में चेचक एवं हैजा प्रमुख है। आजकल जैसे कोरोना वाईरस भी एक भयावह माहामारी है।

1.6.2 अदृष्ट निमितत्यजन्य रोग

गों के परिचय के संदर्भ में आयुर्वेद एवं ज्योतिष के शास्त्रीय ग्रंथों में, रोगों के दो प्रकार बताये गये हैं- १. जन्म जात एवं २. आगन्तुक (जन्म के बाद होने वाले)। आगन्तुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं- दृष्टिनिमत्यजन्य (आकस्मिक) एवं अदृष्ट निमित्यजन्य (कर्मजन्य) दृष्ट निमित्यजन्य रोग के बार में पूर्व में चर्चा हो ही गई है। अत: अब हम अदृष्ट निमित्यजन्य रोगों के विषय में जानते हैं।

"अदृष्ट" शब्द जन्मान्तरों में किये गये कर्मों या दैव का पर्यायवाची है। क्यूँकि जन्मान्तरों में किये गये कर्मों का फल को भाग्य, दैव या अदृष्ट कहा जाता है। **"भाग्यमदृष्टं दैवन्ज्य पूर्वकर्मफलं स्मृतम्"।।** अत: अदृष्ट निमितजन्य रोगों से तात्पर्य उन रोगों से है, जो जन्मान्तरों में किये गये कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और जिन्हें आयुर्वेद में कर्मजन्य रोग माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों के अनुसार इन अदृष्ट निमित्य जन्य या कर्मजन्य रोगों की जानकारी बाधक ग्रहों के द्वारा होती है। यह बाधक ग्रह वा रोग कारक ग्रह मनुष्य के जिस अंग, धातु एवं दोष का प्रतिनिधित्व करता है, उससे विकार के माध्यम से शरीर में पैदा होने वाले रोगों की सूचना देते हैं। अदृष्टजन्य रोग दो प्रकार के होते हैं- १. शारीरिक एवं २. मानसिक। अदृष्ट निमित शारीरिक रोगों को ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने दो वर्गों में वर्गीकृत किया है।
१. अंगों के रोग तथा २. दोषजन्य रोग। अंगों में पैदा होओने वाले रोगों और धातु या दोष में विकार के कारण पैदा होने वाले रोगों को दोष जन्य रोग कहते हैं।

शारीरिक रोगों को उक्त दो वर्गों में वर्गीकृत करने का कारण यह है कि कुण्डली में लग्न आदि द्वादश भाव और मेषादि द्वादश (१२) राशियाँ मनुष्य के सर से लेकर पैर तक विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करती है। इनमें से भाव राशि की धातु या दोष का प्रतिनिधित्व नहीं करते, जबकि सूर्य आदि ग्रह एवं मेषादि राशियां शरीर के अंग, धातु एवं दोष तीनों का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों में भावों एवं राशियों की तथा अन्य रोगों में ग्रहों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

यद्यपि "योग" राशि भाव एवं ग्रह इन तीनों उपकरणों से बनते हैं। अत: अन्धापन एवं गूंगापन जैसे अंग विकारों के योगों में राशि एवं भावों के साथ–साथ ग्रहों का उल्लेख अवश्य होता है। तथापि अंग विकार के योगों में ग्रहों की तुलना में राशि एवं भाव की प्रधानता होती है, किन्तु राशि या भाव का शुभाशुभता ग्रहों के शुभ व अशुभ प्रभाव से ही प्रभावित होता है। अत: ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों का मत है कि जिस भाव या राशि पर पाप ग्रह का प्रभाव दृष्टि, युति हो वह भाव या राशि शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है उस अंग में रोग पैदा होगा।

और कुण्डली में जो भाव या राशि शुभ ग्रहों से युत-दृष्ट होती है, वह जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है, शरीर का वह अंग स्वस्थ एवं पुष्ट होता है।

1.6.3 अभ्यास प्रश्न

१. मुख्यत: रोग कितने प्रकार के होते हैं?

२. जन्म के बाद जीवन में पैदा होने वाले आगुन्तक रोग कितने प्रकार के होते हैं?

३. मीन, वृश्चिक, मेष, कर्क या मकर राशि में पाप ग्रह के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो तो कौन सा रोग होता है?

४. यह कोन सा व्याधि योग है- लग्न में सूर्य 12वें चन्द्रमा एवं त्रिकोण में मंगल हो।

1.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आप ने अध्ययन किया कि रोग क्या हैं? कैसे उत्पन्न होते हैं? रोगों के कितने प्रकार होते हैं? साथ ही ज्योतिष में रोगों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है? कौन से ग्रह कब व किस स्थिति में रोग कारक होते हैं, रोग परिचय में राशियों की भी उतनी ही भूमिका होती है जितनी कि ग्रहों की। साथ ही जन्मजात रोग और आगन्तुक रोगों के बारे में जाना इसी क्रम में दृष्टि निमतजन्य एवं अदृष्ट निमित जन्य सभी बिषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। आशा है कि इस इकाई के अध्ययन से आप रोगों के परिचय का बोध कर सकेंगे तथा आगे की इकाईयों के अध्ययन में सहायता मिल सकेगी।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **पक्षाघात-** स्नायुविकार के कारण उत्पन्न होने वाला रोग, जिसमें शरीर का अंगविशेष निष्क्रिय हो जाता है।
- **योग-** ज्योतिषीय ग्रहस्थिति, ग्रहों के स्थान दृष्टि-युति सम्बन्ध के कारण बनने वाला योगविशेष।
- **अस्तंगत-** सूर्य के साथ ग्रह के स्थित होने पर उसमें बलहीनता का आना।
- **रोगेश-** षष्ठ भाव का स्वामी।
- **ग्रहयुति-** दो या तीन ग्रहों का एक ही भाव में होना।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. दो

२. दो

३. पंगुता

४. मानसिक

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
6. वीरसिंहावलोक:, पं श्री रामकृष्ण पराशर, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोष, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं. डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोक:, पं श्री रामकृष्ण पराशर:, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

१. रोग से क्या तात्पर्य है? विस्तृत रूप से विवेचन कीजिये।

२. सहज और आगन्तुक रोग कौन-कौन से होते हैं? स्पष्ट कीजिए।

३. जन्मजात रोगों के भेदों को सविस्तार पूर्वक लिखिए।

४. "पूर्वजन्म कृतं पापं व्याधिरूपेण जायते" इस सूक्ति की व्याख्या कीजिये।

इकाई- 2 प्राचीन पद्धतियों में रोग विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 विषय परिचय
2.4 आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति
2.5 ज्योतिषीय चिकित्सा पद्धति
    2.5.1 ज्योतिष शास्त्र में ग्रह चिकित्सा
    2.5.2 रोग विचार में नक्षत्रों की भूमिका
    2.5.3 बोधात्मक प्रश्न
2.6 आध्यात्मिक चिकित्सा
    2.6.1 आध्यात्मिक चिकित्सा का मूल है आस्तिकता
2.7 एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति
2.8 होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति
2.9 यौगिक चिकित्सा
2.10 प्राकृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी) पद्धति
2.11 सारांश
2.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 सहायक पाठ्य सामग्री

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। जिसका शीर्षक **"प्राचीन पद्धतियों में रोग विचार"** है। इससे पूर्व की इकाईयों में आप ने रोग परिचय के विषय में जाना कि रोग कारक ग्रह कैसे रोग उत्पन्न करते हैं। साथ ही रोगों को जानने की विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रह रोगों की सूचना देते हैं तथा उनका प्रभाव जीव-जगत पर कैसे पड़ता है, आदि विषयों के बारे में विस्तृत रूप से जाना। अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे, प्राचीन काल में रोग विचार की कितनी पद्धतियों थी, और उनका स्वरूप महत्व क्या था कितनी प्रभाव शाली थी, इत्यादि विषयों के बारे में गहनता से अध्ययन करेंगे। साथ ही आज के परिप्रेक्ष में इनकी क्या प्रासंगिकता है, इसको जानने का प्रयत्न करेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप-

- ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- पुनर्जन्म परम्परा क्या है? व पुनर्जन्म में कर्मों का क्या स्थान है? जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का इस जन्म में कितना महत्व है।
- रोगों की सम्भावना व जीवन में समस्त शुभाशुभ घटनाओं में पुनर्जन्म के कृत्यों का महत्व से भी परिचित हो पाएंगे।

2.3 विषय परिचय

रोग विचार या चिकित्सा के क्षेत्र में अगर विचार करें प्राचीन पद्धतियों की तो आयुर्वेद विश्व की सबसे प्राचीन पद्धतियों में से एक है, जिसकी प्रासंगीकता आज भी उतनी ही है, जितनी की पहले थी, क्योंकि आयुर्वेद में कही जटिल व्याधियों को जड़ से समाप्त करने की क्षमता है। इसी क्रम में योग चिकित्सा, ज्योतिषीय चिकित्सा, आध्यात्मिक कर्म-विपाक चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा, जल चिकित्सा, प्राकृतिक, चिकित्सा (नेचुरोपैथी) विद्या द्वारा, होमियोपैथी। इसके अतिरिक्त मनश्चिकित्सा, आहार चिकित्सा, रसचिकित्सा आदि प्रमुख चिकित्सा प्राचीन काल में बहु प्रचलित थी।

2.4 आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति

आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति विश्व की सबसे प्राचीन पद्वति है। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को जानने से पहले आयुर्वेद के स्वरुप को जानने का प्रयाश करते हैं। पूर्व की इकाईयों में आपने वैसे आयुर्वेद के स्वरुप को विस्तार पूर्वक जाना तथापि संक्षिप्त रूप से प्रसंगवश जानने का प्रयाश करते हैं। आयुः कामयमानेन धर्मार्थ सुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधायः परमादरः।।(ख्अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-02, पृ. 2,) धर्म अर्थ एवं काम नामक पुरुषार्थों का साधान आयु है। अतः आयु की कामना करने वाले को आयुर्वेद के उपदेशों में परम आदर करना चाहिए। जिस शास्त्र में हित आयु, अहित आयु, सुख आयु एवं दुःख आयु का वर्णन होता था। आयु के लिये हित एवं अहित आहार-विहार एवं औषध का वर्णन हो और आयु कामान बतलाया गया हो तथा आयु का वर्णन हो, उसे 'आयुर्वेद' कहते हैं।

2.4.1 आयुर्वेदाऽवतरण-

ब्रह्मा स्मृत्वाऽमुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्।
सोश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्।।
तेऽग्निवेशादिकांस्तेतुपृथक्तन्त्राणितेनिरे।
तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यःप्रायःसारतरोच्चयः।। अष्टांगहृदयम्[अध्याय-1, सूत्र-03, 04, पृ. 3, सर्व प्रथम ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण करके दक्ष प्रजापति को पढ़ाया था, प्रजापति ने अश्विनी कुमारों को पढ़ाया था, अश्विनी कुमारों ने इन्द्र को और इन्द्र ने अत्रि पुत्र अर्थात् आत्रेय आदि महर्षियों को पढ़ाया था और आत्रेय आदि महर्षियों ने अग्नि वेशआदि को आयुर्वेद का उपदेश किया था फिर अग्निवेश आदि ने पृथक-पृथक मन्त्रों-शास्त्रों की विस्तार के साथ रचना की थी। इधर-उधर बिखरे हुए उन तन्त्रों में से उत्तम सार लेकर यह उच्चय संग्रह किया गया है। इसी ग्रन्थ का नाम अष्टाङ्गहृदय है।

2.4.2 आयुर्वेद के आठ अंग-

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावङ्गानितस्याहुश्चिकित्सायेषुसंश्रिता।।

आयुर्वेद के आठ अङ्ग इस प्रकार है-

1. कायचिकित्सा
2. बालचिकित्सा (कौमारभृत्य)
3. ग्रह चिकित्सा (भूतविद्या)
4. उर्द्धांगचिकित्सा (शालाक्यतन्त्र)
5. शल्य चिकित्सा (शल्य-तंत्र)
6. दंष्ट्राविषचिकित्सा (अगदतन्त्र)
7. जरा चिकित्सा (रसायनतन्त्र)
8. वृषचिकित्सा (बाजीकरणतन्त्र)

उपरोक्त आठ अंगों में चिकित्सा सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

2.4.3 आयुर्वेद में दोषों का वर्णन-

वायुःपित्तंकपफश्चेतित्रयोदोषाःसमासतः।
विकृताऽविकृतादेहंघ्नन्तितेवर्तयन्तिच।।[अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-06, पृ. 3]

आयुर्वेद में संक्षेपतः तीन दोष माने जाते हैं। यथा- 1. वायु 2. पित्त और 3. कफ। ये तीनों दोष विकृत वृद्ध अथवा क्षीण होकर शरीर को नष्ट मृत अथवा रुग्ण करते हैं और अविकृत समृद्ध रहते जीवित या स्वास्थ्य रखते हैं।

2.4.4 दोषों के मुख्य स्थान एवं प्रकोप का काल-

तेव्यापिनोऽपिहृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः।
वयोऽहोरात्रिभुक्तानांतेऽन्त मध्याऽऽदिगाःक्रमात्।। (अष्टांगहृदयम्, अध्याय, सूत्र-0, पृ. 4)

यद्यपि ये तीनों दोष समस्त शरीर में व्याप्त रहते हैं, तथापि नाभि से निचले भाग में वायु का, नाभि एवं हृदय के मध्य भाग में पित्त का और हृदय के उपरि भाग में कफ का आश्रम है और यद्यपि ये

तीनों दोष सर्वदा गति शील रहते हैं। तथापि नमस्के अन्त काल (वृद्धावस्था) में, मध्यमकाल यौवनद्ध में तथा आदिकाल बाल्यकालद्ध में और दिन, रात्रि तथा भुक्त के अन्त, मध्य तथा आदिकाल में विशेष रूप से गतिशील होते हैं।

2.4.5 दोषों काअग्नि और कोष्ठ पर प्रभाव-

तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णोमन्दश्चाग्निःसमैःसमः।
कोष्ठःक्रूरोमृदुर्मध्योमध्यःस्यात्तैःसमैरपि।।
अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-08, पृ. 4,

इन दोषों के प्रभाव से अग्नि (जठराग्नि) भी क्रमशः विषम (वायु से तीक्ष्ण पित्त से तथा मन्द (कफ से) होती है और इन तीनों के सम रहने पर अग्नि भी सम रहती है और कोष्ठ भी वायु से क्रूर, पित्त से मृदु तथा कफ से मध्य रहता है और तीनों के सम रहने से मध्य रहता है।

2.4.6 दोषों से गर्भ की प्रकृति का वर्णन-

शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौविषेणेवविषक्रिमेः।
तैश्चतिस्रःप्रकृतयोहीनमध्योत्तमाःपृथक्।।
समधातुः समस्तासुश्रेष्ठानिन्द्याद्विदोषजाः।। अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-9, 10, पृ. 5,

गर्भाधान के समय जनक के शुक्र तथा जननी के आर्त्तव में अधिकता से अस्थित इन तीनों दोषों से गर्भ की क्रमशः तीन प्रकृतियाँ बनती हैं- वायु से हीन प्रकृति, पित्त से मध्यप्रकृति और कफ से उत्तमप्रकृति और वह सब में श्रेष्ठ होती हैं और जो प्रकृतियाँ दो-दो दोषों के संसर्ग से बनती हैं, वे निन्दनीय होती हैं। इस प्रकार प्राणियों की प्रकृति सात की होती है। शुक्र एवं आर्त्तव में वातादि दोषों की उपस्थिति रहने पर भी गर्भादान वैसे ही हो जाता है जैसे विष में भी विष कृमि की उत्पत्ति हो जाती है अथवा यो पहले गर्भ में वातादि दोषों के गुण-दोष वैसे आ जाते हैं, जैसे विष-क्रिमि में विष के।

2.4.7 धातु तथा मल का वर्णन-

रसाडसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्ज-शुक्राणिधातवः।
सप्तदूष्याः' मला-मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपिच।।(अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-13, पृ. 5,)

आयुर्वेद में रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र। ये सात द्रव्य धातु कहे जाते हैं और मूत्र, पुरीष एवं स्वेद आदि ''मल'' कहे जाते हैं और सब दूष्य अर्थात दूषित होने वाले हैं। वृद्धिः समानैः सर्वेषांवि परीतैर्विपर्ययः।

अर्थात शरीराश्रित उक्त सब दोष, धातु तथा मलों के समान गुण वाले द्रव्यों का सेवन करने से उन दोष, धातु एवं मलद्ध की वृद्धि होती है, विपरीत गुण वाले द्रव्यों के सेवन से क्षय होता है।

2.4.8 रसों का वर्णन और उनका वातादि पर प्रभाव-

रस छः हैं- 1. स्वादु (मधुर-मीठा), 2. अम्ल (खट्टा), 3. लवण, 4. तिक्त, 5. ऊष्ण, 6. कषाय। ये सब रस भिन्न द्रव्यों में पाये जाते हैं या उनसे प्राप्त किये जाते हैं और ये पूर्व बलकार कहते हैं अर्थात मधुर रस सबकी अपेक्षा बल कारक और कषाय सबकी अपेक्षा बल नाशक होता है और प्रथम तीन रस (मधुर, अम्ल एवं लवण) वायु को नष्ट करते हैं और तिक्त आदि तीन रस कफ नष्ट करते हैं। कषाय, तिक्त एवं मधुर रस पित्त को नष्ट करते हैं और इससे विपरीत रस, वात, पित्त एवं कफ को करते या बढ़ाते हैं।

2.4.9 रोग एवं आरोग्य के कारण-

कालार्थकर्मणांयोगोहीन-मिथ्याऽतिमात्रकः।
सम्यग्योगश्चविज्ञेयोरोगाऽऽरोग्यैककारणम्।।(अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-19, पृ. 6,)

काल, अर्थ तथा कर्म के हीन योग, मिथ्यायोग एवं अतियोग रोग के एकमात्र कारण होते हैं और काल, अर्थ एवं कर्म का सम्यक्योग आरोग्य का एकमात्र कारण होता है। काल तीन प्रकार का होता है- 1. शीतकाल 2. उष्णकाल और 3. वर्षाकाल। इन तीन कालों का वर्ष होता है। यहाँ यही काल अभिप्रेत है। इन कालों में शीत आदि का अधिक पड़ना ''अतियोग'' थोड़ा पड़ना हीनयोग तथा विपरीत पड़ना ''मिथ्यायोग'' कहलाता है। दुःख आदि है। अर्थात जब दोष विषम हो जाते हैं, तब कोई न कोई रोग हो जाता है और उन दोषों के साम्य (सम अवस्था) का नाम आरोग्य है अर्थात जब वे सम अवस्था में रहते हैं, तब आरोग्य बना रहता है इसी का नाम ''सुख'' है।

रोग दो प्रकार के होते हैं- 1. निज (वातादि दोषों की विषमता से उत्पन्न) और 2. आगन्तु (अभिघात आदि बाहरी कारणों से उत्पन्न)। रोगों के अधिष्ठान भी दो हैं- 1. काम अर्थात शरीर और 2. मनस्। मनस के दोष दो हैं- 1 रज (रजो गुण और 2 तमस् (तमो गुण।

2.4.10 रोगी एवं रोग की परीक्षा-

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैःपरीक्षेतचरोगिणम्।
रोगंनिदान-प्राग्रूप-लक्षणोपशयाऽऽप्तिभिः।।(अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-22, पृ. 7-8,)

दर्शन, स्पर्शन तथा प्रश्न से रोगी की परीक्षा करनी चाहिए और निदान, पूर्वरूप, लक्षण, उपशय तथा सम्प्राप्ति से रोग की परीक्षा करनी चाहिए। आयुर्वेदिक साहित्य में देश शब्द से दो प्रकार का देश माना जाता है। 1. भूमि देश और 2. देह देश। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव जैसे- शिरोदेश, उदरदेश या वक्षोदेश आदि। भूमिदेश तीन प्रकार का माना जाता है- 1. जाङ्गल देश या जङ्गलदेश, इस भू देश में वायु अधिक बहता है और वायु के रोग भी अधिक होते हैं। 2. अनूप देश इस भू देश में जल अधिक रहता है और कफ के रोग भी अधिक होते हैं और 3. साधारण देश के रोग भी अधिक नहीं होते हैं। इस भू देश में तीनों दोष समावस्था में रहते हैं, फलतः अधिक रोग नहीं होते हैं।

2.4.11 काल एवं औषध के भेद-

क्षणादिर्व्याध्यवस्थाच'कालो'भेषजयोगकृत्।
शोधनंशमनंचेतिसमासादौषधंद्विधा।।(अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-24, पृ. 8,)

आयुर्वेद में काल शब्द से दोस मयों का बोध होता है, अतः वह दो प्रकार का माना जाता है। 1. क्षण अर्थात प्रातःकाल, सांय काल आदि और 2. रोग की आमावस्था एवं जीर्णावस्था आदि। इन दोनों के अनुसार चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है और संक्षेपतः औषध अर्थात चिकित्सा भी दो प्रकार की होती है। 1. शोधन अर्थात वमन विरेचनादि रूप और 2. शमन अर्थात दोषशामक।

2.5 ज्योतिषीय चिकित्सा पद्धति

हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में चिकित्सा ज्योतिष का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान था। अपितु प्राचीन काल में आयुर्वेद के विद्वानों को भी ज्योतिष शास्त्र का सम्यक ज्ञान होता था।

ज्योतिष और आयुर्वेद शास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं। अपितु आयुर्वेद की अपेक्षा ज्योतिष शास्त्र में कर्मजन्य रोगों के विषय में सप्रमाण शास्त्रीय चिंतन अधिक व्याप्त रूप से है। यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्र रोगोत्पत्ति काल के पूर्व निर्धारण में अन्य चिकित्सा शास्त्रों की अपेक्षा अधिक प्रमाणिक व सटीक है।

ज्योतिष शास्त्र की रोगों के विषय में स्व मान्यता है कि प्रत्येक छोटा-बड़ा रोग पूर्वार्जित कर्मों के प्रवाह से उत्पन्न होता है। प्राय: देखने में आता है कि नियमित रूप से जीवन यापन करने वाले लोग, अर्थात जो नियम पूर्वक भोजन करते हैं संयमित आहार-विहार करते हैं ऋतुचर्या के अनुसार वो भी अनायास वीमार हो जाते हैं, तथा ठीक इसी के विपरीत जो लोग अनियमित जीवन यापन करते हैं, अर्थात जिनका खान-पान अनियंत्रित रहता है वो भी स्वस्थ रहते हैं, इसका कारण अगर ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो, ग्रह योग दिखाई देते हैं, और ज्योतिष शास्त्र की यह एक बड़ी विशेषता है, कि कुंडली में घटित ग्रह योगों के माध्यम से यह पूर्व में ही पता चल जाता है, कि किस व्यक्ति को कब, कोन सा रोग किस काल खंड में होगा साथ ही यह भी पता लग जाता है कि रोग साध्य होगा कि असाध्य इसलिए प्राचीन काल में ज्योतिषीय चिकित्सा (ग्रह चिकित्सा) अधिक प्रभाव शाली थी, इसका अभिप्राय ये नहीं है कि आज ज्योतिषीय चिकित्सा प्रभावशाली नहीं है लोग पाश्चात्य संस्कृति की देखा-देखी कर रहे हैं। जिसके कारण अपनी संस्कृति व सभ्यता से वंचित होते जा रहे हैं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि आज शास्त्र मर्मज्ञों की कमी का होना।

2.5.1 ज्योतिष शास्त्र में ग्रह चिकित्सा-

जीवन के घटनाचक्र जिसका एक पहलू स्वास्थ्य एवं रोग भी है, का विचार करने का मुख्य उपकरण योग है। जातक ग्रन्थों में प्रतिपादित योगों में प्रमुख रूप से तीन तत्व होते हैं ग्रह राशि एवं भाव।

होरा ग्रन्थों में ग्रह शील का निरूपण करते समय ग्रहों की राशियों, उच्च, नीच, मूलत्रिकोण राशि उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री उनकी दृष्टि, उनके षड्बल, उनका शुभाशुभ, उनकी अवस्थाएँ एवं उनके चतुर्विध सम्बन्ध आदि का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है। जिसकी विस्तृत चर्चा आगे की इकाइयों में की गई है। और सामान्य जातक ग्रन्थों में लग्नादि द्वादश भाव, उनके विचारणीय विषय, उनके केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लीम, त्रिक, त्रिषडाय द्विद्वादश, मारक उपचय एवं अनुपचय आदि संज्ञाएँ आदि का प्रतिपादन किया गया है। इन सबकी जानकारी होरा ग्रन्थों में मिलती है और इन्हीं ग्रन्थों में राशिशील के निरूपण प्रसंग में चार, स्थिर द्विस्वभाव षोडश वर्ग, राशिबल पारिजातादि संज्ञाएँ आदि को भी प्रति पादन किया गया है इस अध्ययन सामग्री में ग्रह, राशि, भाव के बारे में सामान्य बातों का उल्लेख इसलिए नहीं किया जा रहा है, कि इससे अनावश्यक विस्तार होगा। प्रबुद्ध शिक्षार्थी इन सब प्रारम्भिक बातों से परिचित होंगें। फिर भी प्रसंगवश आगे की इकाईयों में कुछ अंश इन सबके मिलेंगे, फिर भी इनकी जानकारी के लिए होरा ग्रन्थों का अवलोकन कर सकते हैं। यहं पर रोग परिज्ञान के प्रसंग में आवश्यक ग्रह, राशि एवं भाव के बारे में उन्हीं बातों का विचार किया जाएगा, जिनके विना रोगों का ज्ञान करना संभव नहीं है। कौन सा ग्रह किस धातु एवं तत्व का प्रतिनिधित्व करता है? उसका कद एवं रंग-रूप कैसा है? वह शरीर के किन-किन अंगों को प्रभावित करता है? और वह किन-किन रोगों को पैदा कर सकता है? इन सब

बातों का होरा ग्रन्थों में सोदाहरण वर्णन मिलता है। आगे की इकाइयों में इसकी विस्तृत चर्चा की गई है।

2.5.2 रोग विचार में नक्षत्रों की भूमिका

ज्योतिष शास्त्र में अश्विनी आदि 27 नक्षत्र प्रसिद्ध हैं। फलित ग्रन्थों में अभिजित नामक २८ वाँ नक्षत्र भी माना गया है। यह उत्तराषाढा के बाद और श्रवण के पहले आता है। यह नक्षत्र मध्यमान से 19 घटी का होता है, जब कि अन्य नक्षत्र माध्यम मान से 60 घटी के होते हैं। ज्योतिष शास्त्र के सामान्य व्यवहार में इसका उपयोग नहीं है और रोग विचार में भी इसकी कोई ख़ास भूमिका नहीं होती है। अत: 27 नक्षत्रों के आधार पर ही रोगों का विचार किया जाता है। नक्षत्रों का सामान्य परिचय इस शास्त्र के सामान्य ग्रन्थों से किया जा सकता है। यहाँ पर नक्षत्रों का रोगों से क्या सम्बन्ध है? और किस नक्षत्र में रोग होने पर वह कितने समय तक रहता है? इन सब बातों का संक्षिप्त विवरण आप इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत अध्ययन करेंगे। इसी क्रम में राशियों व भावों के माध्यम से भी रोगों का ज्ञान किया जाता है। रोगों के सन्दर्भ में ज्योतिष की प्राविधि अति प्राचीन रही है। जिसकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है, जब सभी उपाय करने के बाद स्वास्थ्य लाभ नहीं होता, तब ज्योतिष शास्त्र की शरण में जाने से मार्ग दर्शन प्राप्त होता है। ज्योतिषीय चिकित्सा के संदर्भ में आप इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत समग्र अध्ययन करेंगे।

2.5.3 बोधात्मक प्रश्न

1. ज्योतिषीय चिकित्सा पद्धति एक प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति है।

   क . सत्य, ख. असत्य

2. **सत्य चुनें -**

   क. ज्योतिष में कर्मजन्य व्याधियों का सही आंकलन किया जा सकता है।

   ख. ज्योतिष शास्त्र जन्य व्याधियों को ही बताने में समर्थ है।

   ग. ज्योतिष शास्त्र कर्मज और दोषज सभी व्यदियों के विषय में साध्यासाध्यता का आंकलन करता है।

   क . सत्य, ख. असत्य

3. **ग्रह, राशी, भावों के शुभाशुभ वश ही रोगों का कथन होता है।**

   क . सत्य, ख. असत्य

4. **दशा के माध्यम से भी रोगों का आंकलन किया जाता है।**

   क . सत्य, ख. असत्य

2.6 आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति

आध्यात्मिक चिकित्सा-ज्ञान, निदान एवं विज्ञान का पूर्ण तन्त्र है। इसमें जीवन की दृश्य-अदृश्य संरचना का सम्पूर्ण बोध है, इसी के साथ यहाँ जीवन के दैहिक-दैविक एवं आध्यात्मिक रोगों के निदान की सूक्ष्म विधियों का समग्र ज्ञान है, इतना ही नहीं इसमें इन सभी रोगों के सार्थक समाधान का प्रायोगिक विज्ञान भी समाविष्ट है, जो मानव जीवन की सम्पूर्ण चिकित्सा के ऋषि संकल्प को दोहराता है।

2.6.1 आध्यात्मिक चिकित्सा का मूल है आस्तिकता-

आस्तिकता के अस्तित्व को झुठलाना संभव नहीं यह इतना स्पष्ट है जितना की हम स्वयं, हमारा अपना जीवन जिन्हें जीवन की सम्पूर्णता का अहसास होता है, वे आस्तिकता की अनुभूति के बिना नहीं रहते जो आस्तिकता को नकारते हैं, दरसल वे जिन्दगी को नकारते हैं। आस्तिकता का मतलब जीवन की होने की सच्ची स्वीकारोक्ति, जीवन और जगत के संबंधों की सक्षम व सघन अनुभूति। प्रारब्ध के सुयोग-दुर्योग जीवन में सुखद- दुखद परिस्थितियों की सृष्टी करते हैं, प्रारब्ध का सुयोग उदय होने से अनायास ही सुख सुविधाएं व सद स्वास्थ्य का आगमन होता है, जबकी यदि दुर्भाग्य का उदय होने से ये सब में न्यूनता का आना वा दुखों का आगमन निश्चित है। मनुष्य जीवन में प्रारब्ध का यह सिद्धांत भागयवादी नहीं बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि की सूक्ष्मता की पारदर्शिता है।

तंत्र की तकनीकी प्रत्येक स्थिति में असरदार सिद्ध होती है। आध्यात्मिक चिकित्सा के प्रयोग से जातक के दु:ख, दुर्भाग्य, दोष पीड़ा विकृति, विरोध आदि के निवारण के लिए करते हैं, तंत्रात्मक विधियाँ ये सभी आध्यात्मिक चिकित्सा के अंतर्गत आती है।

2.7 एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति

प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में एक्युप्रेशर भी एक बहुपयोगी प्रणाली थी, जिसके द्वारा शरीर के विभिन्न हिस्सों के महतवपूर्ण बिन्दुओं पर दबाव डालकर रोगों का निदान किया जाता था। मानव शरीर शिर से लेकर पैर तक आपस में जुड़ा है। तथा हजारों नसें, रक्त धमनियों, मांसपेसियों, स्नायु और हड्डियों के साथ आँख, नाक, कान, हृदय, फेफड़े दांत नाडी आदि आपस में जुड़े हुए हैं। और मानव शरीर रुपी मशीन को बखूबी चलाते हैं अत: एक बिंदु पर दबाव डालने से उससे जुड़ा पूरा भाग प्रभावित होता है। यह पद्वति प्राचीन भारत की प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धति में से एक रही है। जिसकी उपयोगिता आज भी उतनी ही बनी हुई है।

2.8 होमियो पैथी चिकित्सा पद्धति

होम्योपैथी की खोज एक जर्मन चिकित्सक, डॉक्टर क्रिश्चन फेडरिक सैमुएल हैनिमैन (1755 -1843) द्वारा अठारहवीं सदी के अंत के दशकों में की गई थी। यह "समं शमयति" या "समरूपता" दवा सिद्धांत पर आधारित एक चिकित्सीय विधा है। यह दवाओं के द्वारा रोगों की चिकित्सा करने वाली ऐसी विधि है, जिसमें किसी स्वस्थ व्यक्ति में प्राकृतिक रोग का अनुरूपण करके समान लक्षण उत्पन्न किया जाता है, जिससे रोगग्रस्त व्यक्ति का उपचार किया जा सकता है। "समरूपता" के सिद्धांत की इस अवधारणा को हिप्पोक्रेट्स और पेरासेल्सस द्वारा भी प्रतिपादित किया गया था, लेकिन डॉ. हेनिमैन ने इस तथ्य के बावजूद की वह ऐसे युग में रहते थे। जहाँ आधुनिक प्रयोगशाला के तरीके लगभग अज्ञात थे, इसे वैज्ञानिक स्तर पर सिद्ध किया।

होमियोपैथी दवाओं को पशुओं, पौधों,खनिज, के अवशेष और इनी प्राकृतिक पदार्थों से उर्जाकरण या अंत: शक्तिकरण नामक एक मानक विधि के माध्यम से तैयार किया जता है, जिसमें दवाओं के अंत: निहित उपचारात्मक शक्ति को अधिकतम बढाने के लिए लगातार तनुकरण और ह्ल्लन शामिल किया जाता है। इस प्रकार शक्तिकरण के माध्यम से तैयार की गई दवाएं बीमारियों का शमन करने में पूर्ण रूप से कारगर सिद्ध होती है। भारत में होम्योपैथी लगभग दो सो साल पहले आरम्भ की गई थी, आज यह भारत की बहुल वादी स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है।(विकिपीडिया)

2.9 यौगिक चिकित्सा

यौगिक चिकित्सा से तात्पर्य योग विज्ञान अर्थात यौगिक क्रियाओं द्वारा विज्ञान अर्थात यौगिक क्रियाओं द्वारा रोग निवारण करना ही योग चिकित्सा कहलाती है। आसन, प्राणायाम आदि समस्त यौगिक प्रक्रियाओं का उपयोग कर विभिन्न रोगों की चिकित्सा करना ही यौगिक चकित्सा का उदेश्य है। इन समस्त प्रक्रियाओं का शरीर की सूक्ष्म से स्थूल क्रियाओं पर विषित प्रभाव पड़ता है। उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति मनुष्य की अमूल्य निधि है जिसके आधार पर मनुष्य जीवन के सभी उदेश्यों को परिपूर्ण करने के लिए कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। सांसारिक मनुष्य सदैव सुख की कामना करता है तथा सुख की प्राप्ति के विना समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव नहीं है। यहाँ हम योग चिकित्सा को संक्षिप्त रूप से जानने का प्रयत्न करेंगे। योग का पारमार्थिक लाभ देखा जाय तो यह परमात्मा के साथ एक होने का रास्ता है। तथा स्वात्मतत्व को जनने की विधा भी इसके व्यवहारिक लाभ का सीधा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है। यह शारीरिक एवं मानसिक रोग के शमन की परम बहुपयोगी चिकित्सा पद्धति है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमको देखने को मिलता है।(विकिपीडिया)

योग चिकित्सा आयुर्वेद के अनुसार- **"या क्रियाव्यधिहारिणी सा चिकित्सा निगद्यते"** अर्थात विभिन्न क्रियायें संसाधन व उपाय जिनसे रोग का निवारण होता है उन्हें चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है। यौगिक चिकित्सा से तात्पर्य योग विज्ञान अर्थात योग की पद्धति से निदान करना ही योग चिकित्सा है, सामान्य शव्दों में कहा जाय तो यौगिक संसाधनों का वह समूह (यम, नियम, आसन, ध्यान, धारणा और प्राणायाम षट्कर्म आदि) जिससे व्याधि की अवस्था से रोगी को स्वास्थ्य लाभ में सतत उन्नति मिले उसे यौगिक चिकित्सा कहते हैं। यह हजारों वर्ष पुरानी परम्परा वर्तमान में भी उतनी ही प्रभावी है जितनी की पहले थी।विकिपीडिया

2.10 प्राकृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी) पद्धति

नेचुरोपैथी Naturopathy एक वैकल्पिक चिकित्सा-पद्धति एवं दर्शन है जिसमें प्राकृतिक स्वव चिकित्सा (self-healing) अनाक्रमक (non-in vasive) आदि कहे जाने वाले तरीकों का उपयोग होता है जिन्हें छद्मवैज्ञानिक तरीके कहा जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा का दर्शन और विधियाँ प्राणतत्ववाद (vitalism) और लोक चिकित्सा पर आधारित है न कि प्रमाण आधारित चिकित्सा (EBM) पर।विकिपीडिया

प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत रोगों का उपचार व स्वास्थ्य लाभ का आधार है- रोगाणु से लड़ने की शरीर की स्वाभाविक क्षमता। प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ आती हैं, जैसे- जल चिकित्सा, होमियोपैथी, सूर्य चिकित्सा, रंग चिकित्सा, एक्यूप्रेशर, मृदा चिकित्सा, ध्वनि चिकित्सा आदि। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचलन में विश्व की कई चिकित्सा पद्धतियों का योगदान है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली चिकित्सा की एक रचनात्मक विधी है, जिसका लक्ष्य प्रकृति में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्वों के उचित इस्तेमाल द्वारा रोग का मूल कारण समाप्त करना है। यह न केवल एक चिकित्सा पद्धति है बल्कि मानव शरीर में उपस्थित आंतरिक महतवपूर्ण शक्तियों या प्राकृतिक तत्वों के अनुरूप एक जीवन शैली है। यह जीवन कला तथा विज्ञान में सम्पूर्ण क्रान्ति है।

4.11 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हमने भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों के बारे में जाना। उस चिकित्सा पद्धति में कैसे चिकित्सा की जाती थी? कैसा उसका स्वरुप था? इन सभी विषयों को आप ने जाना। आज के भौतिक युग में भी हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धतियाँ बहुत ही प्राशंगिक है। जिसके प्रभाव को पूरा विश्व स्वीकारता है। आयुर्वेद और योग जैसी प्राच्य स्वास्थ्य विधाएं आज समूचा विश्व अपना रहा है, इसी प्रकार भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को भी विश्व भर में अपनाया जा रहा है। जिससे समग्र मानव जाती शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का लाभ ले रहे हैं।

2.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
6. वीरसिंहावलोक:, पं श्री रामकृष्ण पराशर:, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

2.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं. डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोक:, पं श्री रामकृष्ण पराशर:, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
10. वीकीपीडिया अंतर्जाल

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का परिचय दीजिये।
2. प्राकृतिक चिकित्सा के स्वरुप का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. ज्योतिषीय चिकित्सा का परिचय दीजिये।

इकाई- 3 रोगों की साध्यासाध्यता

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विषय परिचय
3.4 आयु
    3.4.1 आयु के प्रकार
3.5 अरिष्ट योग
3.6 मध्यमायु योग
3.7 अमितायु योग
3.8 रोगारम्भ काल से रोगों की साध्या-असाध्यता का विचार
    3.8.1 साध्य रोग
    3.8.2 असाध्य रोग
    3.8.3 अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रहों के मृत्यु दायक रोग
    3.8.4 अष्टम स्थान की राशिवश मृत्यु दायक रोग
    3.8.5 मृत्यु दायक रोग
    3.8.6 रोगी की मृत्यु होगी की नहीं?
3.9 सारांश
3.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 सहायक पाठ्य सामग्री
3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। जिसका शीर्षक **"रोगों की साध्यासाध्यता"** है। इससे पूर्व की इकाईयों में आप ने रोग परिचय के विषय में जाना कि रोग कारक ग्रह कैसे रोग उत्पन्न करते हैं। साथ ही रोगों को जानने की विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रह रोगों की सूचना देते हैं तथा उनका प्रभाव जीव-जगत पर कैसे पड़ता है आदि विषयों के बारे में विस्तृत रूप से जाना। अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे कि रोग क्या है? और शास्त्र में किस प्रकार से इसके विषय में बताया गया है? इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे। साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप-

- ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- पुनर्जन्म परम्परा क्या है? व पुनर्जन्म में कर्मों का क्या स्थान है? जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का इस जन्म में कितना महत्व है।
- रोगों की सम्भावना व जीवन में समस्त शुभाशुभ घटनाओं में पुनर्जन्म के कृत्यों के महत्व से भी परिचित हो पाएंगे।

3.3 विषय परिचय

सामान्यतया रोग दो प्रकार के माने जाते हैं 1. साध्य एवं 2. असाध्य। जो रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाता हैं, उन्हें साध्य रोग कहते हैं। किन्तु जो रोग चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर भी ठीक नहीं हो पाते, अपितु जीवन भर चलते रहते हैं, या जिनके कारण रोगी की मृत्यु तक हो जाती है, वे रोग असाध्य कहलाते हैं। ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने रोग के इस सन्दर्भ (साध्यासाध्यता) में बड़े ही तार्किक प्रमाणिक एवं वैज्ञानिक रूप से शास्त्रीय ग्रन्थों में दिया है। उसके अनुरूप रोगों के साध्यासाध्यता का निर्णय करने के लिए सर्वप्रथम रोगी के जीवन के बारे में जानना चाहिए कि उसकी आयु कितनी शेष है।(प्रश्न मार्ग 9/3) यदि रोगोत्पत्ति काल में रोगी की आयु समाप्त हो रही हो तो, ये जानना चाहिए कि रोग असाध्य होने वाला है, रोग की असाध्यता के कारण रोगी की मृत्यु होगी। यदि ठीक इसके विलोम आयु शेष है तो रोग साध्य होगा अर्थात उपचार के माध्यम से ठीक हो जाएगा। इसलिए रोग के विषय में जानने के लिए आयु निर्णय जरूरी हो जाता है, इसी बात को चरक संहिता के सूत्र स्थान में आचार्य चरक भी यही कहते हैं और ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने भी यही बात कही है- **"आयु: पूर्वं परिक्षेत पश्चाद लक्षणमादिशेत अनायुषाम हि मर्त्यानां लक्षणे: किंप्रयोजने:"।।** अत: रोगों की साध्यासाध्यता को जानने के लिए आयु को जानना परम आवश्यक है कि किस ग्रह योग में उत्पन्न जातक की आयु कितनी है अर्थात आयु के प्रकारों जैसे अरिष्ट, अल्पायु, मध्यायु, पूर्णायु परमायु इत्यादि। मृत्यु जब आती है तो कोई ना कोई बहाना करके आती है चाहे वह रोग हो या दुर्घटना त्रासदी। अत: शास्त्र वचनों को ग्राह्य करके आयु प्रकरण से समन्धित आयु व उसके प्रकार तथा योगों का संक्षिप्तत: रूप से अध्ययन करते हैं।

3.4 आयु

यदि आयु को परिभाषित रूप से जाने तो जातक के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के जीवन काल को आयु कहते हैं। ज्योतिष शास्त्र के विद्वान् मनीषियों आचार्यों का कहना है कि जन्मान्तरों में किये गये कर्मों को भोगने के लिए प्राणी के जीवनकाल को उसकी आयु कहा जाता है। यह आयु प्रारब्ध आदि कर्म के प्रभाव से दीर्घ, मध्य या अल्प होती है।(प्रश्नमार्ग 9/ 45) जातक शास्त्रों में आयु का निर्णय योग, निसर्गादिभेद एवं दशा के द्वारा निर्णीत आयु को दशायु कहते हैं।

3.4.1 आयु के प्रकार

योगायु- योगायु का निर्णय मुख्यतया 6 प्रकार के योगों से किया जता है- 1. सद्योरिष्ट योग, 2. अरिष्ट योग, 3. अल्पायु योग, 4. मध्यायु योग, 5. दीर्घायुयोग, 6. अमितायु योग। सद्योरिष्ट योगों में अधिकतम 1 वर्ष की आयु होती है। अरिष्ट योग होने पर 2 वर्ष से 12 वर्ष तक की आयु होती है। अल्पायु योग में अधिकतम 23 वर्ष की, मध्यायु योग में 70 वर्ष तथा दीर्घायु योगों में अधिकतम 100 वर्ष आयु होती है । अमितायु योग होने पर व्यक्ति 100 वर्ष से अधिक जीवित रहता है।(प्रश्नमार्ग अ. 9 श्लोक 54- 58) इन 6 प्रकार के योगों में से सद्योरिष्ट एवं अरिष्टयोग होने पर ग्रहदशा का विचार नहीं करना चाहिए। इन दोनों प्रकार के योगों मेंप्रभाव वश शुभ या अशुभ किसी की ग्रह दशा में शिशु की मृत्यु हो जाती है। यहाँ योगों का प्रभाव मुख्य माना गया है। यही कारण है कि वैद्यनाथ आदि आचार्यों ने 12 वर्ष की आयु के बाद ही आयुर्दाय का निर्णय करने पर जोर दिया है।(जातक पारिजात 4/1-2) शेष तीनों योगों (अल्पायु, मध्यायु, एवं दीर्घायु योग) में मारकेश आदि की दशा के आधार पर आयु का निर्णय किया जाता है।(प्रश्न मार्ग अ. 9/श्लो.57) तात्पर्य यह है कि किसी सद्योरिष्ट तथा अरिष्ट योग में मृत्यु काल का योग या निर्णय योग या गोचरीय ग्रहस्थिति से हो जाता है। किन्तु अल्पायु, मध्यायु एवं दीर्घायु योगों में ऐसा नहीं होता। अल्पायु योग में 13 से 32 वर्ष तक मधयायु योग में 33 से 70 वर्ष तक तथा दीर्घायु में 70 से 100 वर्ष तक आयु होती है। इन योगों में मृत्यु का निर्णय मारकेश ग्रहों की दशा एवं भुक्ति के अनुसार किया जाता है। अमितायु योग होने पर आयुर्दाय का विचार नहीं करना चाहिए।प्रश्न मार्ग एवं रोगों का सम्भावित काल ,उनकी सध्यासाध्यता प्रो.शुकदेव चतुर्वेद अपितु इस योग के होने पर मनुष्य की आयु प्राय: 100 से अधिक वर्ष की होती है।

2. **सद्योरिष्ट-** जातक शास्त्र के विविध ग्रन्थों में सद्य: अरिष्ट के अनेक योगों का वर्णन आता है। इन योगों के होने पर उत्पन्न शिशु की 1 वर्ष के भीतर मृत्यु हो जाती है। इन योगों में प्रमुख योग इस प्रकार है-

- ❖ सांय: काल में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तथा पाप ग्रह राशियों के अंतिम नवांश में हो, तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है।(वृहत्ज्जातक 6/1-4)
- ❖ कुंडली में यदि केंद्र स्थानों में पापग्रह हों तथा चंद्रमा भी इनके साथ हो तो शीघ्र मृत्यु योग बनाता है।
- ❖ चंद्रमा के पूर्वार्ध में पाप ग्रह तथा चन्द्र के परार्ध में शुभ ग्रह हो शीघ्र मृत्यु होने की सम्भावना रहती है।

- ❖ जन्म लग्न एवं सप्तम भाव से द्वितीय स्थान एवं द्वादश में पाप ग्रह हो तो शीघ्र मृत्यु होती है।
- ❖ लग्न एवं सप्तम में पाप ग्रह हो तथा चन्द्रमा पापग्रह के साथ हो और उस पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टी न हो तो मृत्यु हो जाती है।
- ❖ शनि-मंगल एवं सूर्य ये तीनों एक साथ अष्टम स्थान में या षष्ठ स्थान में हो तथा शुभ ग्रह से दृष्ट युक्त न हो तब भी मृत्यु योग बनता है।
- ❖ लग्नेश नीच राशि में हो या अष्टम स्थान में हो, शनि भी नीच में हो या सप्तम में हो तो जातक शीघ्र मर जाता है।(जातक पारिजात 4/20)
- ❖ जन्म के समय सूर्यादि ग्रह बलहीन होकर आपोक्लीम में हो तो उत्पन्न शिशू 2 या 6 मास के भीतर मर जाता है।
- ❖ शनि लग्न या सप्तम स्थान में हो, चन्द्रमा वृश्चिक या जलचर राशि में हो तथा शुभग्रह केंद्र में हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।
- ❖ जिसकी कुंडली में गुरु मेष, का या वृश्चिक या मकर का हो तथा प्रात: मध्याह्न या सायंकाल जन्म हो तो वह शिशु 1 माह के भीतर मर जाता है।
- ❖ जन्म कुण्डली में अष्टम स्थान में सूर्य, मंगल एवं शनी होतो एक मास के भीतर मृत्यु होती है।
- ❖ जिस नक्षत्र में केतु का उदय हुआ हो उस नक्षत्र में जन्म लेने वाला बालक २२ मास के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है।
- ❖ दो राशियों की सन्धि में जन्म हो और वह पाप गढ़ से दृष्ट या युत हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।
- ❖ चन्द्रमा केंद्र या अष्टम स्थान में मृत्यु भाव में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।

उपरोक्त अरिष्ट योग ज्योतिष शास्त्र के जातक ग्रन्थों में मिलते हैं।

3.5 अरिष्ट योग

आयु के सन्दर्भ में अरिष्ट योगों के विषय में जानना भी परम आवश्यक है। जिन बच्चों का जन्म अरिष्ट योग में होता है, वे बच्चे इन योगों के प्रभाव वश १२ वर्ष की आयु के भीतर मर जाते हैं। कुछ आचार्यों का यह भी मत है कि योग बच्चे के माता पिता के उन पापों के द्योतक हैं, जिनके प्रभाव से उसकी मृत्यु होती है। इन योगों को बालारिष्ट भी कहतें हैं। फलित शास्त्र के प्राय: सभी ग्रन्थों में बालकों के अरिष्ट काल व इन योगों का विस्तार से वर्णन मिलता है। उनमें से कुछ महत्व पूर्ण योग निम्नलिखित हैं-

- ❖ जन्म के समय चन्द्रमा छटवें या आठवें स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक आठवें वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है। यदि उक्त स्थान में स्थित चंद्रमा पर पाप एवं शुभ गढ़ दोनों प्रकार के ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक ४ वर्ष के भीतर मृत्यु को जाता है।
- ❖ जन्म लगन में क्षीण चंद्रमा हो तथा केंद्र (१.४.७.१०) एवं अस्थम स्थान में पापग्रह हों तो शिशु की वाल्यावस्था में मृत्यु हो जाती है।

- जन्म कुण्डली में दो पापग्रहों के मध्य स्थित चंद्रमा केंद्र या अस्थम स्थान में हो तो भी उत्पन्न बालक बच्पन में ही मर जाता है।
- राहू से ग्रस्त तथा पापग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न में हो और मंगल अस्थम में हो तो शिशु अपनी माता के साथ मर जाता है।
- यदि जन्म लग्न में निगड, अहि या पाशधर संज्ञक द्रेष्काण हो और उससे क्रूर गढ़ हों तथा उसे उसका स्वामी ग्रह न देखता हो तो बालक ७ वर्ष में मर जाता है।
- लग्न में सूर्य, मंगल एवं शनी हो सप्तम स्थान में वृष या तुला राशी में क्षीण चन्द्रमा हो तथा उसे गुरु न देखता हो तो बालक एक वर्ष में मर जाता है।
- सूर्य, चन्द्रमा एवं मंगल ५वें स्थान में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न बालक ९ वर्ष में मर जाता है।
- जन्म कुंडली में किसी भी भाव में मकर के नवांश में स्थित शनि हो और उसे बुध देखता हो तो बालक १० माह में मर जाता है।
- सूर्य के साथ स्थित बुध को शुभ ग्रह देखते हों तो बालक राजकुमार जैसे सुख भोगकर ११ वर्ष में मर जाता है।
- चन्द्र लग्न का स्वामी होकर सूर्य शनी के साथ अष्टम स्थान में हो तथा उन्हें शुक्र देखता हो तो बालक १२ वर्ष में मर जाता है।
- लग्नेश या राशीश दुर्बल होकर दु:स्थान में स्थित हो तो राशी की संख्या तुले वर्ष में बालक मर जाता है।
- यदि चन्द्रमा एवं सूर्य के साथ मंगल हो तो बालक ९ वर्ष में मर जाता है।
- कर्क या सिंह राशी में लग्न से षष्ट, अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो और उसे सब गढ़ देखते हो तो बालक ६ वर्ष में मर जाता है।
- जन्म कुंडली में केंद्र स्थान में स्थित राहू को पापग्रह देखते हों तो बालक वर्ष भर में मर जाता है।
- जन्म कुण्डली में छठे भाव या आठवें भाव में स्थित चन्द्रमा को शुभ एवं पाप ग्रह देखते हो तो बालक ४ वें वर्ष में मर जाता है।(जात्काभरण अरिष्ट अध्याय श्लोक २०-२६)
- सूर्य एवं मंगल के साथ चन्द्रमा मिथुन या कन्या शीं में हो और उसे एनी गढ़ न देखते हो तो बालक ९ वें वर्ष में मर जाता है।
- यदि चन्द्रमा सप्तम में हो, अष्टमेश लग्न में हो तथा उन्हें सब पाप गढ़ देखते हो तो बालक ३ साल में मर जाता है।
- मंगल की रसहीन में ज्रू हो तथा गुरु की राशी में मंगल हो तो बालक ४ वर्ष में मर जाता है।
- मंगल की राशी में द्वितीय, षष्ठ या अष्टम स्थान में गुरु हो तो बालक छठे वर्ष में मर जाता है।

- कर्क या सिंह राशी में षष्ट, अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो तहा उस पर सब पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो तो ६ वर्ष में बालक की मृत्यु होती है ऐसा उपरोक्त स्थिति जातकाभरण के अरिष्टा अध्याय में वर्णित है।
- चतुर्थ स्थान में शनि के साथ सूर्य हो तो बालक ९ वर्ष में मर जाता है।
- लग्न में राहू हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो ५ वर्ष में बालक मर जाता है।
- अष्टम स्थान में राहू हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक दो वर्ष में मर जाता है।
- केंद्र स्थान में राहू हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक १० वर्ष में मर जाता है।
- सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न में राहू हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो बालक को ७ वें वर्ष में अरिष्ट होता है।
- चतुर्थ स्थान में राहू तथा केंद्र में चन्द्रमा हो तो बालक १० वर्ष में में मर जाता है।
- अष्टमेश केंद्र में हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो ३२ वें वर्ष में व्यक्ति की मृत्यु होती है।
- पाप ग्रह छठे आठवें, बारहवें स्थान में हो, लग्नेश निर्बल हो तथा किसी शुभ ग्रह से दृष्टि-युत न हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है।
- द्वितीय एवं द्वादश स्थान में पाप ग्रह हों, उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तथा क्रूरषष्ट्यांश में हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है।
- यदि लग्नेश एवं समस्त शुभ ग्रह आपोक्लीम (३, ६, ९, एवं १२) स्थान में हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है।
- जन्म राशी तथा उससे अस्थम स्थान का स्वामी ये दोनों परस्पर शत्रु हो तो लग्नेश एवं अष्टमेश परस्पर शत्रु हों तथा लग्नेश एवं सूर्य आपस में शत्रु हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है।
- यदि लग्नेश की अपेक्षा अष्टमेश बलवान हो वह केंद्र में हो तथा पाप ग्रह अष्टम एवं द्वादश स्थान में हो तो मानुष अल्पायु होता है।
- यदि केंद्र एवं त्रिकोण में स्थित शुभ ग्रह की लग्नेश पर दृष्टि न हो तथा लग्नेश एवं लग्नेशाधिश्टित राशी के स्वामी पर भी शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है।
- यदि निर्बल अष्टमेश अष्टम में हो या वह केंद्र में हो तथा लग्नेश भी निर्बल हो तो अल्पायु होती है।
- अष्टमेश नीच राशि में हो शनी निर्बल हो तथा पाप ग्रह लग्न में हो तो अल्पायु होती है।
- अष्टम में शुभ ग्रह भी हों अष्टमेश बलवान हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो अल्पायु होती है।
- लग्नेश के साथ व्ययेश एवं अष्टमेश हो, तृतीयेश अष्टम में हो इन दोनों को पाप ग्रह देखते हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है।

❖ केंद्र में पाप ग्रह हों, उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तथा लग्नेश बलहीन हो तो अल्पायु होती है।

3.6 मध्यमायु योग

आयु के संदर्भ में आप ने उपरोक्त अल्पायु और बाल्यावस्था में अरिष्टता मृत्यु के सन्दर्भ में कुछ योगों के विषय में जाना अब आगे इसी सन्दर्भ में मध्यायु के विषय में कुछ योगों का अध्ययन करेंगे। जिन योगों के प्रभाव वश मनुष्य की आयु ३३ वर्ष से ७० वर्ष तक की होती है उन्हें फलित शास्त्र में मध्यमायु योग कहते हैं। ये योग भी दो प्रकार के होते हैं। ये योग भी दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के योगों में आयु या मृत्यु के वर्ष का उल्लेख रहता है। तथा दुसरे प्रकार के योगों में किसी वर्ष विशेष का स्पष्टत: उल्लेख नहीं रहता। इस प्रकार के योगों में मारकेश ग्रहों का विविध प्रकार से निर्णय कर उनकी दशा-अन्तर्दशा के अनुसार मृत्यु के वर्ष की जानकारी कर आयु का निर्धारण किया जाता है।

आइये मध्यायु के कुछ प्रसिद्ध योगों का अध्ययन करते हैं जो जातक ग्रन्थों में वर्णित हैं-

1. लग्नेश एवं अष्टमेश शनी एवं चन्द्रमा तथा लग्न एवं होरालग्न इन तीनों के द्वारा आयु का निर्णय करना चाहिए। ये दोनों द्विस्वभाव राशी में हो या इनमें से एक घर तथा दुसरे स्थिर राशी में हो तो मध्यमायू होती है।
2. लग्नेश निर्बल हो गुरु केंद्र या त्रिकोण में हो पापग्रह त्रिक (६, ८, १२) स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।
3. लग्नेश केंद्र में गुरु एवं शुक्र के साथ हो तो पूर्ण आयु होती है।
4. तीन ग्रह उच्चराशि में हो, लग्नेश एवं अष्टमेश से युक्त हो तथा अष्टम स्थान में पाप ग्रह न हो तो पूर्ण आयु होती है।
5. अष्टम स्थान में ३ ग्रह हों अथवा ३ ग्रह अपनी उच्च राशि या मित्र स्थान या स्वर्ग में हो तथा लग्नेश बलवान हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है।
6. उच्च राशि में स्थित किसी भी ग्रह के साथ शनि या अष्टमेश हो तो मनुष्य की दीर्घ्यु होती है।
7. पापग्रह तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो, शुभ ग्रह केंद्र-त्रिकोण में हो तथा लग्नेश बाली हो तो मनुष्य की पूर्णायु होती है।
8. षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम में शुभग्रह हों तथा तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में पाप ग्रह हों तो दीर्घायु होती है।
9. पाप ग्रह षष्ठ स्थान में हो तथा लग्नेश केंद्र में हो दीर्घायु प्रदान करते हैं।
10. अष्टमेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी तथा लग्नेश ये दोनों केंद्र में हो तो मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है।
11. सूर्य मंगल एवं शनी ये तीनों चार नवांश में हो, गुरु एवं शुक्र ये दोनों स्थिर नवांश में हो तथा शेष ग्रह द्विस्वभाव राशि के नवांश में हो, तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक 100 वर्ष जीवित रहता है।
12. अष्टमेश लग्न में हो तथा लग्नेश गुरु एवं शुक्र से दृष्ट युत हो तो पूर्णायु होती है।
13. अष्टमेश अपनी उच्च राशि में हो, शुभ ग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो अष्टम भाव का कारक बलवान हो तो दीर्घायु होता है।

14. शुभ ग्रह अपनी राशी में हो तथा अष्टमेश सप्तम या अष्टम स्थान में हो तो दीर्घायु प्रदान करते हैं।
15. लग्नेश केंद्र में राहू एवं शुक्र के साथ हो या उनसे दृष्ट हो तो दीर्घायु होती है।
16. केंद्र में शुभ ग्रह, अष्टम के अलावा अन्य भावों में पापग्रहों तथा षष्ठ स्थान में चन्द्रमा हो तो ८६ वर्ष की आयु होती है।
17. लग्नेश से केन्द्र में गुरु हो तथा तृतीय षष्ठ, एकादश एवं द्वादश स्थान में पाप ग्रह हो तो १०० वर्ष की आयु होती है।

3.7 अमितायु योग

अमितायु योग में उत्पन्न में उत्पन्न व्यक्ति की आयु १०० वर्ष से अधिक होती है। आचार्य वराहमिहिर एवं भटोत्पल्ल आदि का कथन है कि इस योग में आयुर्दाय की गणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आचार्य वैद्यनाथ के अनुसार इन योगों में उत्पन्न मनुष्य की आयु काफी लम्बी होती है, जिसे उन्होंने युगान्तमायु या चिरायु कहा है। इस प्रकार के कतिपय योग जातक ग्रन्थों में मिलते हैं, जो इस प्रकार है।

1. जन्म लग्न में कर्क राशि में चन्द्रमा एवं गुरु हो केंद्र में बुध, शुक्र हों तथा शेष ग्रह (सूर्य, मंगल, एवं शनि) तृतीय , षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो तो मनुष्य की अमितायु होती है।
2. सूर्य मंगल एवं गुरू ये तीनों शनि के नवमांश में नवम भाव में या उसके नवांश में बलवान हो तथा चन्द्रमा लग्न में हो तो मनुष्य की चिरायु होती है।
3. सूर्योदय के समय जन्म हो, गुरु एवं शनी एक ही नवमांश में नवम या दशम भाव में विद्यमान हो तो मनुष्य चिरायु होता है।
4. मेष का अंतिम नवांश लग्न में हो, उसमें गुरु या शुक्र हो वरिश के मध्य नवांश में चन्द्रमा हो तथा मंगल सिंह नवांश में हो तो मनुष्य की असन्ख्यायु होती है।
5. कर्क लग्न हो गुरु केंद्र में गो पुरंश में हो तथा शुक्र त्रिकोण में पाराव्तंश में हो तो मनुष्य की युगांत आयु होती है।
6. इसी प्रकार पराशरादि आचार्यों ने निसर्गायु, पिन्डायु, लग्नायु, अंशकायु आदि के विषय में भी शतर में योग दिए हैं, यहाँ हम रोगों के सम्बन्ध में सिर्फ यहीं समझने का प्रयत्न करते हैं कि यदि जातक की आयु ठीक होगी तो रोगों से उसकी सदयता भी उतनी ही ठीक होगी, परन्तु यदि आयु ठीक नहीं है तो जातक असाध्य रोगों से जूझकर मृत्यु को प्राप्त करता है। आप सब अध्येता आयु प्रकरण को संक्षिप्त रूप से समझ ही गए होंगे इसी सन्दर्भ में हम रोगों की साध्यता व असाध्यता के विषय में कुछ चर्चा करते हैं-

3.8 रोगारम्भ काल से रोगों की साध्या-असाध्यता का विचार

1. यदि रोग आरम्भ काल में निम्नलिखित ग्रहयोग में से कोई एक हो तो रोगी की मृत्यु हो जाती है अथवा रोग दीर्घकाल तक चलता है और वह असाध्य हो जाता है।

2. जन्म कुंडली में अष्टमेश, गुलिक, शनि २२ वाँ द्रेषकाण या उसके स्वामी जिस राशी में हो उस राशि में गोचरीय चार्वश शनि गया हुआ हो।(फलदीपिका १७/श्लोक २-५ एवं १९)

3. जन्म कुंडली में सूर्य के द्वाद्शंश की राशि, अष्टमेश के नवांश की राशि या लग्नेश के नवांश की राशि में रोगारम्भ के समय गुरु एवं सूर्य हो।

4. जन्म काल में जो अष्टमेश या सिरी की राशी हो, रोगारम्भ के समय उस राशि में चन्द्रमा हो।
5. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा उस राशी में हो जिसमें लग्न से २२ वन द्रेषकाण हो।
6. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा प्रश्न लग्न से अष्टम स्थान में हो।
7. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा प्रश्न लग्न से अष्टम स्थान में हो।
8. रोगी की राशी से गुलिक अष्टम राशि में हो।
9. रोगी की जन्म राशि या जन्म लग्न से अष्टम गुलिक हो।
10. रोगी का नक्षत्रेश अष्टम स्थान में हो।

उक्त योगों के अलावा रोगारम्भ के समय यदि निम्नलिखित में से कोई एक दोष हो तो उस समय होने वाला रोग असाध्य होता है, तथा चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर वह ठीक नहीं होता। ये दोष इस प्रकार है-

1. रोगारम्भ कालीन लग्न एवं चन्द्रमा का निर्बल होना।
2. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा पर पाप ग्रहों की दृष्टि।
3. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा की पापग्रहों से युति।
4. जन्म लग्नेश एवं राशीश का अस्त होना या पापाक्रांत होना।
5. जन्म लग्ननेश एवं राशीश का निर्बल होना या त्रिक स्थान में होना।
6. रोगारम्भ के समय अपशकुन एवं अशुभ निमित्तों का होना।
7. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा का मृत्यु संज्ञक अंशों में होना।
8. केंद्र त्रिकोण तथा अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो।
9. प्रश्न लग्न में पृष्टोदय राशि हो, केन्द्र स्थानों में पाप ग्रह हो तथा चन्द्रमा अष्टम में तो रोगी मर जाता है।
10. प्रश्न कुण्डली में द्वितीय, सप्तम एवं द्वादश स्थान में पाप ग्रह हो तथा लग्न, षष्ठ या अष्टम में चन्द्रमा हो तो रोगी शीघ्र मर जाता है।

3.8.1 साध्य रोग

जो रोग चिकित्सा या एनी उपाय करने से ठीक हो जाते हैं, वह साध्य कहलाते हैं। यदि रोगारम्भ के साथ रोगी की आयु समाप्त न होती हो तथा रोगी की कुंडली में पूर्वोक्त असाध्य रोगों का कोई न कोई योग हो तो रोग साध्य होता है इसलिए पूर्व में आयु चर्चा में साध्यता-असाध्यता की बात हुई।

जातक शास्त्र के आचार्यों ने कुछ ऐसे योगों को भी बताया है, जिनमें उत्पन्न व्यक्ति का स्वास्थ्य प्राय: आजीवन ठीक रहता है, तथा उसे होने वाले रोग चिकित्सा आदि से ठीक हो जाते हैं। ये योग इस प्रकार हैं-

1. शुभ ग्रह के साथ लग्नेश लग्न में हो।
2. शुभ ग्रह के साथ लग्नेश लग्न में स्थित हो।
3. लग्नेश केंद्र या त्रिकोण स्थान में अपनी उच्च राशी में स्थित हो।
4. शुभ ग्रह से युत या दृष्ट लग्नेश स्व नवांश में हो।
5. लग्नेश केंद्र त्रिकोण या उच्च राशि नवांश में हो तथा लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो।

इत्यादि स्थितियां रोगों की साध्यता की सूचक हैं।

3.8.2 असाध्य रोग-

जो रोग चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर भी ठीक नहीं होते हैं वे असाध्य रोग कहलाते हैं। ये रोग दो प्रकार के होते हैं १- मृत्युदायक २- आजीवन चलने वाले। जिस रोग से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है उसे मृत्यु दायक रोग कहते हैं। तथा जो रोग मनुष्य को जीवन भर कष्ट देता है, उसे आजीवन चलने वाला रोग कहते हैं। ज्योतिष शास्त्र में अष्टम एवं तृतीय भाव को आयु का पर्तिनिधितव भाव माना गया है। अत: इन भावों में स्थित या इनके देखने वाले ग्रहों के अनुसार आयु को समाप्त करने वाले (मृत्युदायक) रोग का निर्णय किया जाता है। इसके अलावा जातक ग्रन्थों में मृत्यु दायक रोगों के अनेक योगों का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

फलित ज्योतिष में कुण्डली के षष्ठ भाव को रोग कहते हैं। अत: इस भाव में स्थित ग्रह, इस भाव को देखने वाला ग्रह तथा इस भाव के स्वामी ग्रह से आजीवन चलने वाले रोगों का विचार होता है। आचार्य मन्त्रेश्वर का मत है कि अष्टम स्थान में सूर्य आदि ग्रह हो तो निम्नलिखित रोगों से मृत्यु होती है-

ग्रह	मृत्यु दायक रोग
सूर्य-	अग्नि भय, विषम ज्वर, पित्त विकार
चन्द्र-	हैजा, जलोदर टीवी।
मंगल-	रक्त चाप , रक्त जानी व्याधि चोट, दूर घटना पीलिया रक्त की कमी तथा भ्रांति।
बुध-	पांडू पीलिया, रक्त की कमी तथा भ्रान्ति कफज रोग।
गुरु-	कफज रोग
शुक्र-	मूत्र जन्य रोग, वीर्य जन्य रोग, गुप्त रोग।
शनि-	सन्निपात, लकवा एवं वायु रोग।
राहू-	कुष्ठ, विष रोग, सर्प एवं जहरीले जीव का काटना व चरम रोग।
केतु-	आकस्मिक दुर्घटना, कृमी रोग, कीट दंश एवं किसी जानवर से भय।

3.8.3 अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रहों के मृत्यु दायक रोग-

यदि अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तो जो ग्रह अष्टम स्थान को देखता हो उसकी धातु के विकार से या पूर्वोक्त दाह आदि रोगों से मृत्यु होती है।

हड्डी, रक्त, मांस, मज्जा त्वचा, वीर्य, एवं स्नायु ये रोग सूर्यादि ग्रहों की धातु होती है।

ग्रह	धातु	रोग
सूर्य	अस्थि	अस्थि ज्वर, अस्थि स्राव, हड्डी में चोट
चन्द्र	रक्त	रक्त स्राव, रक्ता भाव, रक्त चाप एवं रक्त विमारियाँ
भौम	मज्जा	व्रण, स्फोट, विसर्प एवं मसूरिका ।
बुध	तवचा	दाद, खाज, खुजली, गांठ ,फोड़ा, फुंसी एवं कुष्ठ
गुरु	वसा	सूखा स्थौल्य आदि ।
शुक्र	वीर्य	वीर्य विकार, मधु मह, गुप्त रोग।
शनि एवं राहु	स्नायु	सन्निपात, पक्षा घात एवं स्नायु विकार।

3.8.4. अष्टम स्थान की राशिवश मृत्यु दायक रोग

यदि अष्टम एवं तृतीय स्थान एवं तृतीय स्थान किसी भी ग्रह से दृष्ट या युत न हो तो अष्टम स्थान की राशि के अनुसार मृत्युदायक रोग का निर्णय करना चाहिए। आचार्य वराहमिहिर आदि आचार्यों का मत है कि अष्टम स्थान की राशि काल पुरुष के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती हो मनुष्य के शरीर के उसी अंग में मृत्यु दायक रोग पैदा होता है। अष्टम स्थान में मेषादि राशियां होने पर निम्नलिखित रोगों से मृत्यु होती है-

राशियाँ	मृत्युदायक रोग
मेष	शिरो रोग , मानसिक रोग
वृष	नेत्र, कर्ण, नासिका, एवं मुख रोग
मिथुन	हस्त रोग, फेफड़े एवं स्वाश रोग
कर्क	हृदय रोग
सिंह	उदार रोग
कन्या	नाभि एवं गुर्दे के रोग
तुला	वस्ति एवं मूत्राशय के रोग
वृश्चिक	गुप्त रोग एवं वृषण के रोग
धनु	गठिया
मकर	जानुरोग
कुम्भ	जंघा क्षति रोग
मीन	श्लीपद एवं पोलियो

3.8.5 मृत्यु दायक रोग

जातक शास्त्र में कुछ प्रमुख मृत्यु प्रद स्थिति को बनाने वालेयोगों का विवेचन किया गया है, प्राय: सभी जातक ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है। जो इस प्रकार हैं-

1. जन्म कुण्डली में शनि कर्क में तथा चन्द्रमा मकर में हो तो जलोदर से मृत्यु होती है। (ब्रिहत्जातक अ.२५ श्लो.३-७)

2. दो पाप ग्रह के मध्य में स्थित चन्द्रमा कन्या राशि में हो तो रक्त विकार या शोष रोग से मृत्यु होती है।

3. द्वितीय स्थान में शनी, चतुर्थ में चन्द्रमा एवं दशम में मंगल हो तो शरीर में कीड़े पड़ने से मृत्यु होती है।

3. क्षीण चन्द्रमा पर बलवान मंगल की दृष्टी हो तथा अष्टम भाव में शनि हो तो गुदा रोग, क्रीमी रोग या दाह रोग से मृत्यु होती है।

4. अष्टम भाव में स्थित क्षीण चन्द्रमा को शनि देखता हो तो गुदा रोग नेत्र रोग या शतर के घाव से मृत्यु होती है।

5. लग्नेश चतुर्थेश एवं गुरु एक साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।

6. सूर्य के स्थान में बुध हो और उसे पाप ग्रह देखते हों तो ज्वर से मृत्यु होती है।

7. अष्टम स्थान में राहू हो तो चेचक रोग से या पित्त रोग से मृत्यु होती है।

8. लग्नेश, चतुर्थेश , द्वितीयेश एक साथ हो तो अजीरण से मृत्यु होती है।

9. अष्टम स्थान में सूर्य एवं शनि हो तो विभूति रोग से मृत्यु होती है।

10. चतुर्थ भाव में शनि मंगल हो तो शूल रोग से मृत्यु होती है।

3.8.6 रोगी की मृत्यु होगी की नहीं?

रोगी की मृत्यु होगी की नहीं? फलित शास्त्र के ग्रन्थों में इसे इस प्रकार का शास्त्रीय रीति से विचार किया गया है। रोगोत्पन्न होने के समय जो तिथि, नक्षत्र वार एवं ग्रह स्थिति होती है, उसके द्वारा रोगी के जीवन मृत्यु का विचार किया जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि इस बारे में जब भी प्रश्न किया जाय, उस समय की कुंडली बनाकर वक्ष्यमाण योगों के अनुसार रोगी के जीवन-मरण का निश्चय कर लेना चाहिए।

1. आश्लेषा, आद्रा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनों पूर्वा, विशाखा धनिष्ठा एवं कृतिका इन ११ नक्षत्रों में सूर्य, मंगल या शनि वार में चतुर्थी, षष्ठी, नवमी, द्वादशी या चतुर्दशी तिथि में रोग उत्पन्न हो तो रोगी की शीघ्र मृत्यु होती है।
2. ज्येष्ठा, स्वाती, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा एवं पूर्वा भाद्रपदा इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्यु प्रद होता है।
3. छिद्र तिथियों में पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, एवं शनि) के वारों में कृतिका, धनिष्ठा, भरणी एवं शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्यु दायक होता है।
4. अष्टमी, पर्व (अमावस्या एवं पूर्णिमा) या रिक्ता तिथी में पाप ग्रह के वार में तथा त्रिजन्म नक्षत्र, विपत प्रत्यरी या वध नक्षत्र में चन्द्रमा होने पर उत्पन्न रोग मृत्यु दायक होता है।
5. प्रश्न लग्न में प्रिष्टोदय राशि हो, केन्द्र स्थान में पापग्रह हो तथा चन्द्रमा अष्टम में तो रोगी मर जाता है।

बोधात्मक प्रश्न-

1. आयु .....प्रकार की होती है।

क. दो

ख. तीन

ग. चार

घ. छ:

2. रोगों की प्रवृति .....प्रकार की होती है।

1. आयु .....प्रकार की होती है।

क. दो

ख. तीन

ग. चार

घ. छ:

3. जन्म के समय चन्द्रमा छटवें या आठवें स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक कितने वर्ष में मृत्यु को प्राप्त करता है।

क. दो वर्ष

ख. तीन वर्ष

ग. चार वर्ष

घ. आठवें वर्ष

4. षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम में शुभग्रह हों तथा तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में पाप ग्रह हों तो कोन सी आयु होती है।

क. दीर्घायु
ख. अल्पायु
ग. मध्यमायू
घ. पूर्णायु

3.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने अध्ययन किया कि रोगों की साध्यता व असाध्यता के लिए सर्व प्रथम हम को जातक की आयु का निर्णय कर लेना चाहिए कि आयु कितनी है? मध्यायु है या पूर्णायु है कोई मृत्यु योग तो नहीं है, तदुपरांत रोग के लक्षण कारणों को ध्यान में रख कर रोग की साध्यता व असाध्यता के विषय में विचार कर लेना चाहिए। इन सब बातों का हमने इस इकाई में क्रमबद्ध रूप से अध्ययन किया आशा है कि आप सब अध्येता इस सिद्धांत से परिचित हो पाए होंगे।

3.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. घ. छः
2. क. दो
3. घ. आठवें वर्ष
4. क. दीर्घायु

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
6. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

3.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं. डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
10. रोगों का सम्भावित काल और उनकी सध्या असाध्यता (शोध लेखन प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी श्री. ला. ब. शा. रा. संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली)

11. दैवज्ञा भरण, वृहतपराशर होरा शास्त्र, जातक तत्व, फल दीपिका, वृद्ध यवन जातक, जातका भरण, प्रश्न मार्ग बृहत् जातक

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आयु के प्रकार व आयु की समीक्षा कीजिए।
2. दीर्घायु योगों को सप्रमाण लिखिए।
3. साध्य रोगों के विषय में बताये।
4. असाध्य रोगों के योग व मृत्यु योगों का उल्लेख कीजिए।

इकाई- 4 रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय कारण

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 विषय परिचय
4.4 रोग परिज्ञान के उपकरण
4.5 रोग ज्ञान के उपकरण
    4.5.1 स्थान से बननेवाले योग
    4.5.2 भाव से बनने वाले योग
4.6 योग एवं उसके भेद
    4.6.1 स्थान एवं भाव से बनने वाले योग
    4.6.2 स्थान, भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग
    4.6.3 योगों के प्रमुख तीन तत्व
    4.6.4 ग्रह
    4.6.5 रोग विचार में ग्रहों का परिचय
    4.6.6 ग्रहों की राशियाँ
    4.6.7 ग्रहों की उच्च, नीच एवं मूल त्रिकोण राशि
    4.6.8 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध
    4.6.9 ग्रहों के बल
4.7 सारांश
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** से सम्बन्धित है। जिसका शीर्षक **"रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकरण"** है। इससे पूर्व की इकाई में आप ने ग्रह फल के विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि कैसे ग्रहों का प्रभाव जीव जगत पर पड़ता है। अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे कि रोग एवं रोगी का परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कैसे किया जाता है? और इसके क्या-क्या ज्योतिषीय उपकरण होते हैं? इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे। साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- ज्योतिष में रोग व रोगी के परीक्षण के मुख्य आयामों से परिचित होंगे।
- साथ ही आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से भी अवगत होंगे।
- ये जानने का भी प्रयत्न करेंगे कि रोग कैसे उत्पन्न होते हैं।
- साथ ही विषय वस्तु के प्रायोगिक पक्ष से भी परिचित हो सकेंगे।

4.3 विषय परिचय

हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है, उसे रोग कहते हैं। इन रोगों की उत्पत्ति के कारण, लक्षण भेद एवं तदशमनोपाय (चिकित्सा) विधि तभी सही तरह से सफल हो पायेगा, जब रोग का परीक्षण सही तरह से कर पायेंगे। आयुर्वेद में भी भगवान धनवन्तरि ने आचार्य सुश्रुत से कहा कि रोगी की चिकित्सा शुरू करने से पहिले वैद्य को रोगी की आयु का परीक्षण कर लेना चाहिए। क्यूंकि आयु के शेष होने पर ही चिकित्सा द्वारा वह ठीक हो सकता है। यदि आयु शेष हो तो रोग, ऋतु (मौसम) वय, बल एवं औषधि का विचार कर चिकित्सा करनी चाहिए। यही बात ज्योतिष शास्त्र में भी जोर दे कर कही गई है कि आयु का परीक्षण पहले भली-भांति कर लेना चाहिए।

आयु: पूर्वं परीक्षेत पश्चालक्षण मादिशेत ।
अनायुषाम् तु मर्त्यायानं लक्षनै किं प्रयोजनम् ।।[सु.सं.सूत्रस्थान २५/४/१०]
आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना ।
स्वस्थमुदिश्य वा प्रश्न एव वातुरमित्यम् ।।[प्रश्न मार्ग ९/३-५]

4.4 रोग परिज्ञान के उपकरण

जैसे कि पूर्व की इकाईयों में भी चर्चा हुई है कि अनुचित कर्म के फल स्वरुप रोग पैदा होते हैं, वे कर्म चाहे इस जन्म के हो या जन्म जन्मान्तरों के। इस जन्म के अनुचित कर्मों को आहार एवं विहार की अनियमितता कह सकते हैं, जबकि जन्मान्तरों के अनुचित कर्मों को परम्परया अशुभ या पाप कर्म कहा जाता है। क्यूंकि जन्म-जन्मान्तरों से वर्तमान जीवन के आज और भविष्य तक के सभी कर्मों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है, जिसका विस्तृत अध्ययन आप ने पिछली इकाइयों में किया, फिर भी प्रसंग वश देखिये संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण। तथा

इन कर्मों के फल को जानने की ज्योतिष शास्त्र में तीन प्रविधियां अविष्कृत एवं विकसित की गयी है। अत: रोगों के परिज्ञान के मुख्यत: तीन उपकरण माने जाते हैं- १ योग २ दशा एवं ३ गोचर। होराशास्त्र की यह मुख्य विशेषता है, कि जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का इस जन्म में कब-कब, क्या-क्या और कैसा–कैसा फल मिलेगा? इसको यह शास्त्र ठीक उसी प्रकार साफ-साफ बता देता है, जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थ का ज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादित, योग दशा एवं गोचर की विधी से किया जाता है। लघुजातक में भी कहा गया है– **यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुं तस्य कर्मण: पंक्तिम्। व्यन्जयती शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव।।** लघुजातक अ.१/श.२

4.5 रोग ज्ञान के उपकरण

ग्रह योग- पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का परिज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादित ग्रह योगों के द्वारा किया जाता है। यथा-सूर्य आदि ग्रह मनुष्य के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ये ग्रह अनिष्ट स्थान एवं पाप प्रभाववश अनिष्टकारी हो जाते हैं तब वह शरीर के जिस अंग धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसमें विकार या रोग की सूचना देते हैं। किन्तु जब वे ही ग्रह इष्ट स्थान एवं शुभ प्रभाववश शुभ हो जाते हैं, तब वे शरीर के उस अंग, धातु एवं दोष आदि के द्वारा आरोग्यता की सूचना देते हैं। इस प्रकार ग्रह योगों के माध्यम से यह शास्त्र विविध शारीरिक एवं मानसिक रोगों का विचार करने कि सशक्त एवं समर्थ प्रविधि बताया है।

4.6 योग एवं उसके भेद

ग्रह योगों को ज्योतिषीय भाषा में योग कहा जाता है। यह मनुष्य को पूर्वार्जित कर्मों के फल से मिलता है, इसलिए योग कहलाता है। प्रश्न मार्ग में इसका उदाहरण इस प्रकार से मिलता है– **ग्रहाणां स्थिति भेदेन पुरुषान योजयन्ति हि। फले: कर्म समुदभूतेरीति योगा: प्रकीर्तितिता:।।**[प्रश्न मार्ग अ.९ श्लो. ४८] वस्तुत: योग पूर्वार्जित कर्म को उसके फल से जोड़ने वाला सेतु है। यह योग ग्रहों की राशि एवं भाव में स्थित या परस्पर युति के द्वारा बनता है । ग्रह, राशि एवं भाव इन तीनों तत्वों के द्वारा बनने वाले योग आधार के भेद से सात प्रकार के होते हैं। प्रश्न मार्ग अ. ६ श्लोक ४९-५० यथा- १. स्थान, २- भाव, ३- ग्रह, ४- स्थान एवं भाव, ५- स्थान एवं ग्रह, ६- भाव एवं ग्रह, ७- स्थान भाव एवं ग्रह।

4.6.1 स्थान से बननेवाले योग –

मेष आदिद्वादश राशियों, उनके भेद (चार, स्थिर, दिस्वभाव, उच्च, नीच, मूलत्रिकोण, स्वराशि एवं शत्रु राशि आदि।) और राशियों के वर्ग (लग्न, होरा, द्रेस्काण, सप्तमांश, नवमांश, दशांश, द्वादशांश, त्रिंशंश, षष्ट्य अंश एवं पारिजातादि।) को ग्रहों का स्थान कहा जाता है। इनसे बनने वाले योगों को स्थान से बनाने वाले योग कहा जाता है। जैसे-

(अ.) मिथुन लग्न में उत्पन्न व्यक्ति भोगी, बन्धुरत, दयालु धनवान एवं रोगी होता है। (जातक पारिजात अ.९ श्लो.१०६)

(आ.) वृश्चिक के नवमांश में उत्पन्न व्यक्ति दु:खी दरिद्री दुर्बल एवं रोगी होता है। जा.पा.९/९७

भाव से बनने वाले योग- जन्म कुण्डली से प्रारम्भ कर १२ भाव होते हैं, जिनके नाम हैं- १-तनु २-धन, ३-सहज, ४-सुख, ५- पुत्र, ६-रोग, ७- जाया, ८- मृत्यु, ९- धर्म, १०- कर्म, ११- आय एवं १२ व्यय। इन भावों में से कुछ को केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लीम, त्रिक, त्रिषडाय, मारक, उपचय एवं अनुपचय कहते हैं इनके द्वारा बनने वाले योगों को भाव से बनने वाला योग कहा जाता है। जैसे -

(अ.) चन्द्रमा से द्वितीय एवं द्वादश में कोई ग्रह न हो, तो कम द्रुम योग होता है। (वृ.जा.१३/६)

(आ.) लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो, तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है।(वृ.जा.५/१)

ग्रहों से बनने वाले योग –

होरा शास्त्र ने शुभ एवं अशुभ फल के सूचक नौ ग्रह माने गए हैं। इन ग्रहों की युति से बनने वाले योगों को ग्रह योग कहा जाता है, जैसे

(अ.) जिसके जन्म के समय चन्द्रमा पूर्णबली तथा पूर्ण कला वाला हो वह राजा बनता है। (जातक पारिजात ७/३८)

(आ.) केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से राजयोग कारक होते हैं। (लघु पारशरी १४-१५)

4.6.2 स्थान एवं भाव से बनने वाले योग–

जातक ग्रंथों में स्थान एवं भाव से बनने वाले योग पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं ।इन योगों में स्थान एवं भावों का दोनों का समान रूप से महत्व होता है। जैसे-

(अ.) सप्तम स्थान में द्विस्वभाव राशि हो, तो शात्रों द्वारा किये गए अभिचार (तन्त्र क्रिया) से रोग होता है । जा.पा.६/७७

(आ.) दूसरा उदाहरण देखें मेष लग्न में उत्पन्न व्यक्ति बन्धु द्वेषी, दुर्बल शरीर, क्रोधी, मानी, पराक्रमी एवं दुर्बल जानु होता है। जा.पा.९/१०५

भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग- भाव में ग्रहों की स्थिति या भाव पर ग्रहों की दृष्टि द्वारा बनने वाले योगों को भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग कहा जाता है। इन योगों में भाव एवं ग्रह इन दोनों का सामान महत्व होता है। उदाहरण-

(अ.) लग्न में मंगल हो और षष्ठेश दुर्वल हो, तो जातक को अजीर्ण गुल्म एवं शूल रोग होता है।

(आ.) पापग्रह एवं राहू के साथ चन्द्रमा ५, ८ या १२ वें भाव मे हो, तो जातक पागल एवं क्रोधी कलह प्रिय होता है।(जा.पा. ६/८३)

स्थान, भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग– ज्योतिष शास्त्र के होरा ग्रंथों में स्थान, भाव एवं ग्रह इन तीनों का सामान रूप से महत्व होता है। और ये तीनों मिलकर विशेष प्रकार के फल की सूचना देते हैं। (अ.) कर्क लग्न में चंद्रमा एवं गुरु हो, केन्द्र में बुध एवं शुक्र हो तथा शेष ग्रह त्रिषडाय में हो तो जातक की अमित आयु होती है।(सारावली अ. १०/७४)

4.6.3 योगों के प्रमुख तीन तत्व –

जीवन के घटनाचक्र, जिसका एक पहलू स्वास्थ्य एवं रोग भी है, इसका विचार करने का मुख्य उपकरण योग है। जातक ग्रंथों में प्रतिपादित योगों में प्रमुख रूप से तीन तत्व प्रमुख होते हैं- १- ग्रह, २- राशि एवं ३- भाव।

ज्योतिषशास्त्र के होरा ग्रंथों में ग्रहशील का निरूपण करते समय ग्रहों की राशि उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री, उनकी दृष्टि, उनके षड्बल उनका शुभाशुभ, उनकी षड् अवस्थाओं एवं उनके चतुर्विध सम्बन्ध आदि का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है। इन सबकी जानकारी होरा ग्रंथों से कर लेनी चाहिए। जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, वो होरा ग्रंथों से लिए गये हैं। किसी भी योग चाहे वो भाव से बनने वाला हो या स्थान से उसकी पुष्टता, ग्रहों के या भाव के बलाबल से अवश्य कर लेनी चाहिए फल कथन से पूर्व कि क्या वह योग प्रबल है, कि नहीं।

उपरोक्त उपकरण ही प्रमुख हैं रोग व रोगी के परीक्षण हेतु इन उपकरणों के आधार पर हम रोग विषयक तत्वों का पता लगा सकते हैं कि किसी जातक का कौन सा योग है, जो कि रोग उत्पन्न कर सकता है? कोई भी शुभाशुभ योग अपनी भुक्ति (दशा-अन्तरदशा) में ही फल देता है।

ज्योतिष शास्त्र में रोग का विचार करने के लिये जितने योग बताए गए हैं, उनमें तीन तत्व प्रधान हैं- १- ग्रह, २- राशि, ३- भाव। अत: ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोगों का विस्तार से विवेचन करने के पूर्व उक्त ग्रह, राशि एवं भाव का विचार अवश्य कर लेना परम आवश्यक है।

4.6.4 ग्रह–

ज्योतिष शास्त्र में शुभ एवं अशुभ फल के सूचक कुल नव (९) ग्रह माने गए हैं, जैसे– १- सूर्य, २- चन्द्र, ३- भौम, ४- बुध, ५- गुरु, ६- शुक्र, ७- शनि, ८- राहू , ९- केतु। उक्त ग्रहों में राहू तथा केतू ये दोनों छाया ग्रह हैं। अन्य ग्रहों की भान्ति सौरमंडल में इनका ज्योतिषपिण्ड (चमकीला बिम्ब) दिखाई नहीं देता। शेष अन्य सात ग्रहों के ज्योतिष पिण्ड सौर मण्डल में अपनी-अपनी कक्षाओं में घूमते हुए दिखाई देते हैं। यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रंथों में राहू-केतू को गढ़ नहीं माना गया है तथापि शास्त्र में इनके महत्व को स्वीकार कर इन्हें ग्रहों के साथ सम्मलित किया गया है।

आधुनिक काल में पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने सौरमंडल में हर्शल, नेपच्यून एवं प्लेटो नामक तीन अन्य ग्रहों की खोज की है। पाश्चात्य ज्योतिष ग्रंथों में इन ग्रहों के प्रभाव का भी उल्लेख नहीं है। अत: इस पाठ्यक्रम में केवल नव ग्रहों के आधार पर ही रोग का विचार किया गया है।

4.6.5 रोग विचार में ग्रहों का परिचय-

कौन सा ग्रह किस तत्व का प्रतिनिधित्व करता है? उसका कद एवं रंग कैसा है? वह शरीर के किन-किन अंगों को प्रभावित करता है? और वह किन-किन रोगों को उत्पन्न कर सकता है? इन बातों का विचार ज्योतिष ग्रंथों में विस्तार पूर्वक किया गया है।[फलदीपिका मोतीलाल वनारसी दास ,दिल्ली अ.१४/श्लोक ७५-८१]

सूर्य- यह अग्नि तत्व तथा माध्यम कद वाला शुष्क ग्रह है। यह मनुष्यों के (पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के बांयें) नेत्र, आयु, अस्थि, शीर्ष, हृदय, प्राण शक्ति, मेदा, रक्त तथा पित्त को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर हड्डियां मजबूत होती है तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है। और इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर क्षय, पित्त प्रकोप नेत्र रोग, अस्थि रोग, शिरोरोग, हृदय रोग, उषण वात, ज्वर, मूर्छा, चर्मरोग, मृगी एवं शूल रोग होता है।

चन्द्र- यह जल तत्व तथादीर्घ कद वाला जलीय ग्रह है। यह मनुष्यों के (पुरुषों के बांयें तथा स्त्रियों के दांयें) नेत्र, स्तन ,वक्ष, फेफड़ा, मन, मष्तिष्क, उदार, मूत्राशय, रक्त, रस-धातु

शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर में रक्त संचार ठीक बना रहता है, आरोगवृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है। इसके निर्बल अशुभ या रोग कारक होने पर कफ रोग, मूत्र विकार, जलोदर, मुख रोग, नासिका रोग, पाण्डुरोग, क्षय रोग मन्दाग्नि, अतिसार, स्त्रीसंसर्ग जनी रोग, प्रदररोग अपस्मार, वात एवं मानसिक रोग।

भौम- यह अग्नि तत्व तथा सामान्य कद्वाला शुष्क ग्रह है। यह शरीर के कपाल, कान, स्नायु, जननेंद्रिय, मज्जा, पुठों की पुष्टता, शारीरिक पुष्टता, डाह, शोथ, धैर्य एवं पित्त को प्रभावित कर्ता है। इसके बली होने पर व्यक्ति के शरीर में हड्डियां मजबूत होती है। यह निर्बल, अशुभ या रोग कारक हो तो रक्त विकार, रक्तचाप, फोड़ा-फुंसी, खाज, सूजन, चोट, रक्तस्राव कुष्ठ, अग्निदाह, महामारी, गुप्त रोग, शल्य क्रिया आदि होते हैं।

बुध- यह पृथ्वी तत्व तथा सामान्य कद वाला जलीय ग्रह है। शरीर में यह जिह्वा, वाणी, स्वर चक्र, स्वास्नली, अगल मस्तिष्क, केश, मुख, हाथ, एवं त्रिधातु को प्रभावित कर्ता है। इसके बलवान होने पर बालक का मष्तिष्क पूर्ण विकसित होता है, उसका व्यक्तित्व आकेशक, तथा प्रतिपादन शैली मोहक होती है। इसके निर्बल या रोग कारक होने पर मूर्छा, हिस्टीरिया, मानसिक रोग चक्कर आना, न्यूमोनिया, विषमज्वर, त्रिदोष ज्वर, इत्यादि रोग होते हैं।

गुरु– यह आकाश तत्व (मतान्तर से वायु तत्व) तथा मध्यम कद (मतान्तर से ह्रस्व कद) वाला जलीय ग्रह है। शरीर में चर्वी, वीर्य, उदार, यकृत, रक्त धमनी, त्रिदोष तथा कफ को प्रभावित कर्ता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट, होता है, विचार शक्ति अच्छी होती है, तथा मन में शांति होती है। इसके निर्बल होने पर या अशुभ या रोग कारक होने पर उदर विकार, मज्जा दोष, यकृत दोष, प्लीहा, स्थूलता, दंतरोग, वायु विकार, मूर्छा, मस्तिष्क विकार, ज्वर, कर्ण रोग, ऊँचाई से गिरना एवं मानसिक तनाव इत्यादि होता है।

शुक्र– यह जलतत्व तथा मध्यम कद वाला जलीय ग्रह है। शरीर में यह जननेंद्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्ति को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर शुडोल एवं सुन्दर होता है, मनुष्य की काम शक्ति बलवान होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है। इसके निर्बल होने पर या रोग कारक स्थिति में मूत्र जन्य रोग, वीर्य विकार, गुप्त रोग स्त्री संसर्ग जानी रोग, मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न विकार, विष जानी विकार, प्रमेह, मधुमेह प्रदर , कफवायु, पाण्डु रोग होता है

शनि– यह वायु तत्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। यह शरीर में हड्डियां की जोड़, पैर, घुटने, वात, संस्थान, स्नायु संस्थान, मज्जा तथा बात को प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर स्नायुमंडल पुष्ट तथा शरीर सुदृढ़ होता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर वायु विकार स्नायु विकार, जोड़ो का दर्द, गठिया, सन्धिवात, पक्षाघात, पागलपन, डाढ में दर्द, अपचन, खांसी, दमा, अंग-भंग तथा निराशा जंक मानसिक रोग होते हैं।

राहू– यह वात तत्व एवं मध्यम कद वाला ग्रह है। यह शरीर में मष्तिष्क, रक्त, त्वचा, एवं वात को प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर शरीर में फुर्ती, ताजगी एवं चैतन्यता बनी रहती है। तथा इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर चेचक, कृमि मृगी, सर्प दंश, पशुओं से चोट, कुष्ठ एवं केंसर जैसे असाध्यरोग हो जाते हैं।

केतू– यह वायु तत्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है। यह शरीर में वात रक्त तथा चर्म को विशेष रूप से प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर शरीर में श्रम शक्ति, संघर्ष शक्ति, प्रतिरोध

शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। तथा इसके निर्बल होने पर शरीर में सुस्ती, अकर्मण्यता, शरीर में चोट, घाव, चर्म रोग, जटिल रोग एवं एलर्जी हो जाती है। (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी . विद्यापीठ)

4.6.6 ग्रहों की राशियाँ

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य आदि सात ग्रहों को मेष आदि द्वादश राशियों का स्वामी माना गया है। जैसे- सिंह राशि का स्वामी सूर्य, कर्क का चन्द्रमा, मेष तथा वृश्चिक का मंगल, मिथुन एवं कन्या का बुध, धनु तथा मीन का गुरु, वृष तथा तुला का शुक्र और मकर तथा कुम्भ राशि का स्वामी शनि होते है। परन्तु परवर्ती कुछ आचार्यो ने राहू को कन्या राशि तथा केतू को मीन राशि का स्वामी मना जाता है।

4.6.7 ग्रहों की उच्च, नीच एवं मूल त्रिकोण राशि

सूर्यादि ग्रहों की उच्च राशियाँ मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुला, मिथुन एवं धनु मानी गई है। इन ग्रहों की नीच राशियों में भी परमोच तथा परम नीच के अंश इस प्रकार हैं– सूर्य का परमोच्च मेष के १० अंश पर, चन्द्रमा का वृष के ३ अंश पर मंगल का मकर के २८ अंश पर, बुध का कन्या के १५ अंश पर, गुरु का कर्क के ५ अंश पर शुक्र का मीन के २७ अंश पर, शनि का तुला के २० अंश पर, राहू का धनु के १५ अंश पर तथा केतू मिथुन के १५ अंश पर परम नीच होता है। किन ग्रहों को किन राशियों के कितने अंश पर मूलत्रिकोण माना गया है- आईये समझते हैं–

ग्रह	मूलत्रिकोण राशि एवं अंश
सूर्य -	सिंह राशि में १ से २० अंश तक
चन्द्र -	वृष राशि में ४ से ३० अंश तक
मंगल –	मेष राशि में १ से १२ अंश तक
बुध –	कन्या राशि १६ से २५ अंश तक
गुरु –	धनु रशी में १ से २० अंश तक
शुक्र –	तुला राशि में १ से २० अंश तक
शनि -	कुम्भ राशि में १ से २० अंश तक

पूर्वाचार्यों ने राहू एवं केतू को छायाग्रह मानकर उनकी मूल त्रिकोण राशि या स्वराशि नहीं मानी है। किन्तु परवर्ती आचार्यों ने कुम्भ राशि में राहू का मूल त्रिकोण माना है। (जातक पारिजात अ.१ श्लोक२८)

4.6.8 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध –

ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध दो प्रकार का मना गया है- (१) नैसर्गिक सम्बन्ध (२) तात्कालिक सम्बन्ध। वृहत्जातक २/१७-१८

नैसर्गिक दृष्टि से ये निकटता एवं दूसरी के आधार पर मित्र एवं शत्रु माने जाते हैं। नैसर्गिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता, शत्रुता एव उदासीनता इस प्रकार से हैं-

सूर्य- इसके चन्द्रमा, मंगल एवं गुरु मित्र हैं। शुक्र एवं शनि शत्रु हैं। तथा बुध सम हैं।

चन्द्र – इसके सूर्य तथा बुध मित्र हैं। राहू शत्रु है और मंगल, गुरु, शुक्र, शनि सम है।

भौम- सूर्य, चन्द्र, गुरु, मित्र हैं, बुध एवं राहू मित्र हैं। शुक्र एवं शनि सम हैं।

बुध- इसके सूर्य, शुक्र मित्र है, चन्द्रमा शत्रु हैं। तथा मंगल, गुरु, शनि सम है।

गुरु- सूर्य,चन्द्र एवं मंगल मित्र हैं। बुध एवं शुक्र शत्रु हैं। तथा गुरु सम है।

शुक्र- बुध, शनि मित्र हैं। सूर्य एवं चन्द्र शत्रु हैं। मंगल एवं गुरु सम।
शनि– बुध एवं शुक्र मित्र हैं। सूर्य चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं। गुरु सम है।
राहू – इसके बुध, शुक्र, मित्र हैं सूर्य, चन्द्र, मंगल, शत्रु हैं। तथा गुरु सम है।
केतू- इसके बुध, शुक्र, शनि मित्र हैं। सूर्य, चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं।

तत्कालिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता का ज्ञान, उनकी निकटता एवं दूरी के आधार पर मानी जाती है। किसी भी ग्रह से २/३/४/१०/११ एवं १२ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर मित्र होते हैं तथा। १/५/६/७/८ एवं ९ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर शत्रु होते हैं। एक राशि में साथ-साथ रहने पर ग्रहों में युद्ध भी होता है।(सूर्य सिद्धांत ग्रह्युत्याधिकार श्लोक १,२०-२३) अत: एक राशि में रहने वाले ग्रह अत्यन्त निकट होने पर भी परस्पर शत्रु होते हैं।

नैसर्गिक एवं तात्कालिक सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों की आपसी सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों का आपसी सम्बन्ध ५ प्रकार का हो जाता है– १- अति मित्र, २- मित्र , ३- सम, ४- शत्रु एवं ५- अति शत्रु जो ग्रह नैर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक में मित्र तथा अन्य में सम होते हैं, आपस में मित्र कहे जाते हैं। जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं, आपस में सम कहलाते हैं। जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं, आपस में सम कहलाते हैं। जो ग्रह नैसर्गिक तथा तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से शत्रु था दूसरी दृष्टि से सम होतें हैं, परस्पर शत्रु माने जाते हैं। और जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों से आपस में शत्रु होते हैं, वे परस्पर अतिशत्रु कहलाते हैं।

महर्षि पराशर ने ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक मित्रता-शत्रुता के अलावा उनकी युति-दृष्टि आदि के आधार पर अन्य चार प्रकार के सम्बन्ध माने हैं जो इस प्रकार हैं– (१) युति सम्बन्ध (२) दृष्टि सम्बन्ध, (३) स्थान सम्बन्ध एवं (४) एकांतर सम्बन्ध। एक राशि एवं एक ही भाव में साथ-साथ बैठने वाले ग्रहों में युति सम्बन्ध होता है। आपस में एक दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है। तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है। तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठा हो और दूसरे सम्बन्ध होता उसे देखता हो तो उनमें एकांतर सम्बन्ध होता है। इन चार प्रकार के सम्बन्धों को सम्बन्ध चतुष्टय कहते हैं।

ये चार प्रकार के सम्बन्ध ग्रहों में सहयोग या पूरक भाव के सूचक होते हैं। तथा इन संबंधों के प्रभाव वश दोषयुक्त या निर्बल ग्रह भी बलवान होकर कारक या मारक बन जाते हैं।**(लघुपाराशरी अ.२ श्लोक १)**

ग्रहों की दृष्टि– ग्रहों की दृष्टि दो प्रकार की होती है १- साधारण दृष्टि या पाद दृष्टि तथा २- विशेष दृष्टि। प्रत्येक ग्रह जिस स्थान पर बैठा हो, उससे तीसरे तथा १०वें स्थान को एक पाद दृष्टि से ५वें तथा ९वें स्थान को द्विपाद दृष्टि से देखता हैं।(लघु पाराशरी २/ १) इस प्रकार ग्रह जिस स्थान में बैठा हो, उससे १/२/६/११ एवं १२वें स्थान को छोड़कर शेष स्थानों पर उसकी साधारणतया दृष्टि रहती है। किनती सप्तम स्थान पर प्रत्येक ग्रह की पूर्ण दृष्टि रहती है। सूर्यादि ग्रहों में से मंगल, गुरु एवं शनि ये तीन इस प्रकार के हैं, जो सप्तम के अलावा अन्य स्थानों को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, यथा मंगल, ७वें स्थान के साथ-साथ छठे स्थान एवं आठवें स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखता है। इसके अलावा गुरु ५वें और ९वें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है तथा शनि सप्तम के

साथ–साथ तृतीय और दशम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। ग्रहों की साधारण प्रभाव वश तथा पूर्ण दृष्टि का प्रभाव होता है।

6.7.9 ग्रहों के बल–

ग्रहों के बल छ: प्रकार के माने गये हैं- १- स्थान बल, २- दिग बल, ३- काल बल, ४ चेष्टा बल, ५- दृग बल, ६- नैसर्गिक बल।(जातक पारिजात २/३८)

(१) स्थान बल- जो ग्रह अपनी राशि, उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि में हो वह स्थान बलि कहलाता है। अपने नवमांश, द्रेषकाण, या पारिजातादि वैशेषिक वर्ग में स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है। अष्टक वर्ग में जिस राशि पर ४ से अधिक रेखाएं हो, वाहन स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कतिपय राशि या स्थान पर ग्रह के स्थित हो जाने पर उसे बल मिलता है। इस प्रकार के बल को स्थान बल कहते हैं।

(२) दिग बल– दिशा में स्थित होने वाले प्राप्त बल को दिग बल कहते हैं। जन्म कुंडली में लग्न पूर्व को, दशम दक्षिण को, सप्तम पश्चिम को, तथा चुतुर्थ भाव उत्तर को सूचित करता है। इसी प्रकार बुध गुरु पूर्व में, सूर्य,मंगल दक्षिण में, शनि पश्चिम में, चन्द्रमा शुक्र उत्तर में बली होते हैं। लग्न में बुध गुरु, दशम में सूर्य मंगल, सप्तम में शनि, तथा चतुर्थ में चन्द्रमा एवं शुक्र दिगबल के कारण बलवान कहलाते हैं।

(३) काल बल– समयानुसार प्राप्त होने वाला बल काल बल कहलाता है। जैसे- चन्द्रमा, मंगल, शनि, रात्रि में बली कहलाते हैं सूर्य, गुरु, शुक्र दिन में, तथा बुध दिन रात दोनों में बली होता है। सभी ग्रह अपने-अपने काल, होरा में अपने वर्ष में जिसमें वर्षेश हो, अपने मास में तथा अपने दिन में बली होते हैं। इसके इतर शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में तथा पाप ग्रह कृष्ण पक्ष में बली होते हैं।

(४) चेष्टा बल- सूर्य, चन्द्र उत्तरायण में (मकर से मिथुन तक छ: राशियों) में बलवान होते हैं। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ये यदि ग्रह युद्ध में विजयी हो, वक्र गति हो या चन्द्रमा के स्थ हो तो चेष्टा बली कहलाते हैं।

(५) दृग्बल- दृष्टि के प्रभाव वश प्राप्त होने वाले बल को दृग्बल कहते हैं। जिन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो वे दृग्बल कहलाते हैं। और जिन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो वे निर्बल कहलते हैं।

(६) नैसर्गिक बल- ग्रहों के स्वाभाविक बल को नैसर्गिक बल कहते हैं। इस दृष्टि में सूर्य सर्वाधिक बली होता है। शनि से मंगल, मंगल से बुध, बुध से गुरु, गुरु से शुक्र, शुक्र से चन्द्रमा और चन्द्र से सूर्य निसर्गत: बली होता है।

ग्रहों का शुभाशुभत्व- सामान्यतया ग्रह दो प्रकार के होते हैं- १- शुभ, तथा २-पाप । जो ग्रह मनोनुकूल फल देते हैं, वे शुभ तथा जो मन के प्रतिकूल फल देते हैं वे पापग्रह कहलाते हैं।

शुभग्रह- गुरु एवं शुक्र ये दोनों पूर्ण शुभ ग्रह हैं, पूर्ण चन्द्रमा तथा शुभ ग्रह से युक्त बुध भी शुभ माना जाता है। इस प्रकार अधिकतम ४ ग्रह शुभ माने गये हैं १- गुरु, २-शुक्र, ३- पूर्ण चन्द्रमा एवं ४- शुभ ग्रह युक्त बुध।

चन्द्रमा का शुभाशुभत्व– शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा पूर्ण रहता है। इस पूर्ण चन्द्र को शुभ ग्रह माना जाता है, तथा कृष्ण पक्ष की एकादशी से लेकर शुक्ल पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा क्षीण माना जाता है। क्षीण चन्द्र को पाप ग्रह माना जाता है। शेष दिनों में चन्द्र मध्यम होता है, यह मध्यम चन्द्रमा शुभ एवं अशुभ दोनों फल देता है।

पाप ग्रह– सूर्य, मंगल, शनि, राहू एवं केतू ये पाँच ग्रह पाप ग्रह कहलाते हैं। इसके अलावा क्षीण चन्द्र तथा पाप ग्रहों से युत बुध भी पाप ग्रह कहलाता है। पाप ग्रहों की संख्या सात हो जाती है सूर्य, मंगल, शनि, राहू, केतू क्षीण चन्द्र, पाप युक्त बुध। इन पाप ग्रहों में से सूर्य और मंगल को क्रूर ग्रह भी कहते हैं।

ग्रहों की अवस्था– महर्षि पाराशर ने ग्रहों की फल देने की क्षमता का मूल्यांकन करने के लिए उनकी अवस्थायें मानी हैं- १- बाल्यावस्था, २- कुमार अवस्था, ३- युवा अवस्था, ४- वृद्धा अवस्था, ५- मृता अवस्था। विषम राशियों में १ से ६ अंश तक स्थित ग्रहों की वाल्या अवस्था होती है, ७ से १२ अंश तक स्थित ग्रह कुमार अवस्था, १३ से १८ अंश तक स्थित ग्रह की युवावस्था, १९ से २४ अंश तक स्थित वृद्धा अवस्था तथा २५ से ३० अंश तक स्थित ग्रह की मृतावस्था होती है। सम राशियाँ में इसके विपरीत १-६ अंश तक मृतावस्था, ७-१२ अंश तक वृद्धावस्था, १३-१८ अंश युवावस्था, १९-२४ अंश तक कुमारावस्था, २५-३० बाल्यावस्था होती है। (वृहत् पराशर होरा शास्त्र ग्रह अवस्थाध्याय)

बाल्यावस्था का ग्रह कुछ फल देता है। कुमारावस्था का ग्रह आधा फल तथा युवावस्था का ग्रह पूर्ण फल देता है। वृद्धावस्था का ग्रह दुष्ट फल एवं मृतावस्था का अनिष्ट कारक माना गया है–

फलं तु किन्चिद्वितनोति बालास्चार्द्ध कुमारो यतते च पुंसाम्।
युवा समग्रं खचारोऽथ वृद्धः फलं च दुष्टं मरणम् मृताख्यः।। वृ. पा. हो.शा.

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वाल, कुमा, युवा, अवस्थावों में ग्रह के मौलिक प्रभाव (फल) में उतरोत्तर वृद्धि होती है। वृद्धावस्था में उसका प्रभाव घटता है और मृतावस्था में वह प्रभाव हीन हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. रोग परिज्ञान के कितने उपकरण हैं?
2. भाव कितने होते हैं?
3. राशियाँ कितनी होती है?
4. गोचर कितने प्रकार का होता है?

4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि कौन-कौन से रोग ज्ञान के ज्योतिषीय उपकरण हैं साथ ही ये भी जाना कि ग्रह कब रोग कारक होता है। तथा साथ ही ग्रहों के बलाऽबल के सम्बन्ध में भी जाना कि ग्रह किन-किन स्थितियों में बलवान और निर्बल होंगे, और बलवान ग्रह कैसा फल देगा, निर्बल ग्रह कैसे फल देगा। आशा है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप रोग-परिज्ञान के सिद्धांतों को भली-भांति समझकर रोगों का निर्णय व परिज्ञान कर पायेंगे।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 3
2. 12
3. 12
4. 2

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्य सामग्री

1. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास, 1999
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण, 1946
4. लघुजातक, भट्टोत्पल भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. भावप्रकाश, दैवज्ञ श्रीजीवनाथ झा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003
2. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3. जातकालंकार,सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
4. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
6. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
7 .चरक संहिता सूत्र स्थान/सुश्रुत संहिता
8. प्रश्नमार्ग / माधव निदान
9. गदावाली / ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
10. ज्योतिष तत्व /
11. भारतीय ज्योतिष (नेमि चन्द्र शास्त्री)
12. मन्त्र साधना द्वारा ग्रह चिकित्सा (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
13. ज्योतिष एवं रोग (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)
14. रोगों का सम्भावित काल (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1- रोग ज्ञान की प्राविधि क्या है? सविस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2- हरों का बलाबल क्या है? स्पष्ट कीजिए।
3- ग्रहों की अवस्था कितनी होती है उनका फल सहित उल्लेख कीजिए।
4- योग क्या है व कितने प्रकार का होता है? स्पष्ट कीजिए।

खण्ड- तीन (Section-C)
ज्योतिषशास्त्र एवं व्याधि विवेचन

इकाई- 1 रोग ज्ञान की प्रविधि

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 विषय परिचय
1.4 ग्रह प्रभाव का सिद्धांत
1.5 ज्योतिषशास्त्र में व्याधि विवेचन के सिद्धांत
    1.5.1 आयुर्वेदशास्त्र की दृष्टि में व्याधियां
    1.5.2 आयुर्वेद में रोग की परिभाषा
    1.5.3 आयुर्वेद के अनुसार रोग के मुख्य कारण
    1.5.4 आयुर्वेद में रोगों का वर्गीकरण
1.6 ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि में व्याधियां
1.7 अभ्यास प्रश्न
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों,

यह इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धांत **(बी.ए.एस.एल N-321 खण्ड-3)** की है। जिसका शीर्षक **"रोग ज्ञान की प्रविधि"** है। अब तक आपने आयुर्वेद के विषय में जाना कि आयुर्वेद भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्वति है, जिसका अभ्युदय वेदों से हुआ है, और यह ऋषि परम्परा भगवान् धन्वन्तरी से लेकर अग्निवेश, सुश्रुत, चरक वाग्भट आदि से चली आरही है। वस्तुत: यह हमारे पूर्वजों की विरासत एवं हम पर उपकार है कि इस शास्त्र के ज्ञान इस पृथ्वी लोक तक जीव मात्र के कल्याण के लिए दिया। जैसे कि आप जानते होंगे कि हमारे यहाँ जीवन जीने की एक मानवीय सभ्यता रही है , जिसमें देश काल परिसिथिति तथा ऋतुओं के हिसाब से कैसे हमको जीवन यापन करना है उसको आयुर्वेद के ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक दियागया है, प्रसंगवश महर्षि चरक ने अपने ग्रन्थ चरक संहिता में सूत्र स्थान और शरीर स्थान में ऋतुचर्या का वर्णन किया है कि षड ऋतुओं में हमें किस प्रकार से अपनी दिनचर्या को अपनाते हुए जीवन यापन करना है , जिसका उदेश्य है एक स्वस्थ जीवन यदि हम उन उपदेशों का अनुशरण करेंगे अर्थात ऋतुचर्या के अनुसार जीवन यापन करते हैं तो निरोगी और लम्बी आयु व्यतीत कर सकते हैं। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र में भी रोग परिज्ञान के सिद्धांतों की बात की गई है। कि किस प्रकार ग्रह रोग कारक होते हैं किन-किन भावों से रोगों का विचार किया जाता है आदि। आचार्य मंत्रेश्वेर फलदीपिका में लिखते हैं कि **"आयुपूर्वं परीक्षेत पश्चात लक्षणमादिशत अनायुशानामर्त्यानां लक्षणम किं प्रयोजनम"** अर्थात सर्व प्रथम आयु का परीक्षण करना चाहिए रोग के सन्दर्भ में क्यूंकि जिसकी आयु ही शेष नहीं होगी तो रोग के लक्षण आदि का विचार करना व्यर्थ है। यही बात आचार्य चरक भी चरक संहिता में कहते हैं। इसलिए जहाँ रोगों की बात होगी तो ज्योतिष आयुर्वेद दोनों की दृष्टि से विचार करना पडेगा इस सन्दर्भ में दोनों शास्त्र एक दुसरे के पूरक है। इन्हीं सभी महत्वपूर्ण विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

1.2 उदेश्य

प्रिय विद्यार्थियों,

- ❖ इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप ज्योतिष शास्त्र के सिद्धांतों से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ आप जान पायेंगे कि ज्योतिष का महत्व चिकित्साके क्षेत्र में कितना है।
- ❖ ज्योतिष शास्त्र रोगों का आंकलन किस प्रकार करता है, इस सिद्धांत से भली-भान्ति जान पाएंगे। वस्तुत: ज्योतिष शास्त्र और आयुर्वेदशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं, इस सिद्धांत से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ आयुर्वेद के "स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं" सिद्धांत का बोध करता और ज्योतिष शास्त्र भी इसका समर्थन करता है, इस विषय का गहनता से अध्ययन कर सकेंगे।

1.3 विषय परिचय

सर्व प्रथम हम चिकित्सा ज्योतिष की बात करने से पहले सार रूप में ज्योतिष शास्त्र को समझने का प्रयत्न करते हैं- प्राचीनकाल से ही ज्योतिष शास्त्र का सम्बन्ध मानव और मानवीय

सभ्यता एवं तत्सम्बन्धी इतिहास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। आदिकाल में केवल सूर्यादि ग्रहों एवं काल का बोध करवाने वाले शास्त्र को ही ज्योतिष शास्त्र माना जता था। **"ज्योतिषं सूर्यादि ग्रहाणां बोधक शास्त्रम्"** परन्तु शनै: शनै: मानवीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य कि बाह्य एवं आंतरिक प्रवृत्तियों का अनुशीलन भी इस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाने लगा। मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप जैसे सुख-दुःख उन्नति-अवनति, इष्ट-अनिष्ट, भाग्योदय आदि सभी का समाधान ज्योतिष शास्त्र में ढूंडा जाने लगा ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता के सम्बन्ध में किसी भी बुद्धि जीवी व्यक्ति को संदेह नहीं होना चाहिए। जैसे की पूर्व में चर्चा हुई की यह शास्त्र एक सूचलनात्मक शास्त्र है। इस शास्त्र के ज्ञान के द्वारा मनुष्य को शुभ, अशुभ, काल, यश-अपयश, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु, भाग्योदयादि का ज्ञान होता है। उदाहरण के तौर पर देखें जैसे वर्षा आगमन की सूचना शीतवायु के प्रवाह से पूर्वत: ही मिल जाती है। एवं जैसे मछलीयों को सामुद्रिक तूफ़ान की पूर्वानुभूति हो जाती है, उसी भाँती ज्योतिष के आचार्यों द्वारा प्रणीत ज्योतिषीय सूत्रों से मनुष्य के अनुकूल-प्रतिकूल समय का बोध कराने वाला एक मात्र साधन ज्योतिष शास्त्र ही है। प्राचीन काल में दो ही विज्ञान प्रमुख थे। एक आयुर्विज्ञान और दूसरा ज्योतिर्विज्ञान। भारतीय वैदिक वाङमय में "यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे" का सिद्धान्त सुदूरतम प्राचीनकाल से ही लोकविद है। इस सिद्धांत से ये मालूम होता है, कि सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों में जो सिद्धांत काम करते हैं, ठीक तदनुरूप प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते हैं। इस सिद्धांत को यदि हृदयंगम करें तो हमें प्राणी पदार्थ की आंतरिक संरचना के आधार पे ध्यान देना होगा। प्रत्येक प्राणी या पदार्थ की सूक्ष्म तथा प्रथम संरचना का आधार परमाणु है और इन परमाणुओं की इकाईयों (ईंटों) को जोड़कर प्राणी या पदार्थ का वृहत्तम भवन ढांचा तैयार होता है। यह परमाणु सौर जगत के सामान आकार-प्रकार वाला होता है। इसके मध्य में एक धन विद्युत् बिंदु होता है, जिसे केंद्र कहते हैं इसी केंद्र के चारों और अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते हैं। और वे इस गति-विधि में सौर जगत के प्रत्येकक्रिया-कलाप का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार के अनन्त परमाणुओं जिन्हें शरीर विज्ञान की भाषा में कोशिकाएं (cells) कहा जता है। इन्हीं कोशिकाओं के माध्यम से हमारा शरीर एवं शरीर के अवयव सौर जगत के क्रिया कलापों का अनुकरण करते हैं। प्रथम अवलोकन से हमें यह कठिन हो सकता है, कि हमारे और ग्रह-नक्षत्रों के मध्य कोई सीधा सम्पर्क या आदान- प्रदान है। किन्तु हमें यह बात दृष्टि से ओझल नहीं होने देनी चाहिए कि विद्युत् एवं ब्रह्मांड रश्मियों द्वारा हमारा सौर जगत में स्थित ग्रहनक्षत्रों के पिंडों से सीधा सम्पर्क है। जिनकी रासायनिक बनावट निरंतर परिवर्तित होती हुई हम पर सतत एवं अविछिन्न प्रभाव डाल रही है। उपरोक्त बातें निर्विवाद रूप से सत्य हैं कि ब्रह्मांड एवं उसके वासियों के बीच सतत्त सम्बन्ध मानने का समस्त श्रेय प्राचीन भारतीय ऋषि-महर्षि-मनीषियों को ही जाता है। जिन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर ज्योतिष एवं योग शास्त्र के सुमानी सिद्धांतों का प्रणयन किया है।

1.4 ग्रह प्रभाव का सिद्धांत

भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार त्रिगुणात्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत सत्व, रज, एवं, तमोमय है। ज्योतिष- शास्त्र में भी सूर्यादि ग्रहों का इन तीनों गुणों में वर्गीकरण किया गया है। (जातकतत्व दैवज्ञ महादेव शर्मा अ.1,सु.37) जिसका अध्ययन हम अग्रिम इकाईयों में

विस्तार पूर्वक करेंगे। 'जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है, उनकी अमृतमय किरणें जिनमें रजोगुण अधिक रहता है, उनकी उभय गुण मिश्रित किरणें जिनमें तमोगुण अधिक रहता है, उनकी बिषम किरणें एवं जिनमें तीनों गुणों की अल्पता रहती है, उनकी गुणहीन किरणें मानी गयी हैं। ग्रहों के शुभाशुभत्व का विभाजन भी इन किरणों के गुणों से ही हुआ है। आकाश में ग्रहों की गति एवं युति से रश्मियाँ परस्पर मिलती रहती हैं। और एक दूसरे के गुणों को प्रभावित करती रहती हैं। रश्मिविश्लेष्णका सिद्धांत बताता है कि प्रत्येक ग्रहों की रश्मियों में स्थान एवं काल विशेष पर उनके गुणों में ह्रास वृद्धि होती रहती है, जिसे ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में स्थान बल, दिक्बल, कालबल एवं चेष्टा बल कहा गया है। अत: ग्रहों के शुभाशुभ का विचार करते समय उनके बलाबल का विचार करना भी परम आवश्यक माना गया है। आकाश में प्रतिक्षण अमृतरश्मि सोम्य ग्रह अपनी गति से जहाँ-जहाँ गमन करते हैं, उनकी किरणें भूमण्डल के उन प्रदेशों पर पड़कर वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य एवं बुद्धि-आदि पर अपना सोम्य या शुभ प्रभाव डालते हैं। विषमय किरणों वाले क्रूर ग्रह अपनी गति से जहाँ गमन करते हैं, वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य और बुद्धि पर वे अपना दुष्प्रभाव डालते हैं। मिश्रित रश्मि ग्रहों का प्रभाव मिश्रित एवं गुणहीन रश्मि वाले ग्रहों का प्रभाव अकिंचकर होता है। ग्रहों की गति एवं स्थिति की विलक्षणता के कारण यह प्रभाव समस्त पृथ्वी पर एक सा नहीं होता। क्योंकि एक कलावच्छेदन दो विभिन्न देशों पर विभिन्न ग्रहों की रश्मियां एक जैसी नहीं पडतीं। विभिन्न देशों में सूर्य एवं चन्द्र आदि ग्रहों के उदयास्त काल की भिन्नता या देशांतर संस्कार को यहाँ साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अत: यह निष्कर्ष अनायास ही समझ में आ जाता है, कि स्थान विशेष पर ग्रह रश्मियों के वातावरण की अपनी निजी विशेषता के कारण वहां उत्पन्न जातक अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्मे व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव भिन्न आकृति एवं विलक्षण शरीरावयव वाला होगा। इनके स्वास्थ्य आदि वैसा ही बन जाता है। अस्तु इस प्रबंध में मानव के स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालकर ग्रह किन-किन रोगों को उत्पन्न करते हैं? यह विचारणीय है। ज्योतिष में रोग विचार (रोग परिज्ञान के सिद्धांत प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी)

1.5 ज्योतिषशास्त्र में व्याधि विवेचन के सिद्धांत

सनातनी परम्परा में यह शास्त्र उक्ति विख्यात है कि **"वेदोऽखिलं धर्ममूलम्"** वेद का लक्ष्य है ईष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार आर्थात हमारे अशुभत्व का शमन और अभीष्ट की प्राप्ति इसी सिद्धांत को हृदयंगम करके वेदांग शास्त्र ज्योतिष का भी यही लक्ष्य है कि हमारे शुभाशुभ कर्मों के वशीभूत अशुभ फल को पहचान कर जो कि जातक के जन्मांग में अशुभ ग्रहयोग, दशा व गोचर के माध्यम से हम शास्त्रानुशरण करके ज्ञात करते हैं कि अमुक व्यक्ति को अमुक कालखण्ड में अमुक रोग होगा। इन सब विषयों का ज्ञान हम विधिवत चिकित्सा ज्यतिष के माध्यम से ही जान सकते हैं। प्राचीन भारतमें ज्योतिषशास्त्र के मनीषी चिन्तकों ने इस शास्त्रके सुमान्य नियमों द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य तथा उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार काफी गम्भीरता से किया है। आचार्य वाराहमिहिर ने अपनें बृहज्जातक में अपने से पूर्ववर्ती मय, यवन, मणिथ, शक्ति, जीव शर्मा एवं सत्याचार्य आदि मनीषियों का नामोल्लेख करते हुए बताया है कि इन विद्वानों ने मनुष्य की आयु के यथार्थ रूप से परिज्ञान के लिए अनेक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। वृहज्जातक आयुर्दायाध्याय श्लोक-१

यद्यपि आजकल इन आचार्यों की कोई रचना या ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। किन्तु प्राचीनकाल में इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ अवश्य रहे होंगे जिनका सम्यक परिशीलन मनन एवं चिंतन कर वाराहमिहिर ने मनुष्य की आयु और मानव जीवन में उत्पन्न होने वाले अनेक रोगों के योगों का प्रतिपादन किया है।

वाराहमिहिर के काल (सन ५०५) में जातक ग्रंथों में जन्मजात एवं जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले रोगों का योग, दशा एवं,गोचर के आधार पर विचार होने लगा था। यद्यपि उस समय उस अन्धता, काणत्व, मूकता, बधिरता, पंगुता एवं नपुंसकता जैसे जन्मजात रोगों और ज्वर, अतिसार पाण्डु, उदर रोग, कास, कुष्ठ जलोदर क्षय, गुल्म, राजयक्ष्मा, प्रमेह, गुप्तरोग, उन्माद एवं अपस्मार आदि जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले रोगों के विचार तक सीमित रहा है। किन्तु इतने प्राचीन काल में इन रोगों को कर्मजन्य मान कर जिनके कार्य कारणों का आयुर्वेद में भी स्पष्टतया प्रतिपादन नहीं हो पाया था। वे विचारणीय एवं विवेचनाधीन हैं। चिकित्सा ज्योतिष के परिचय में हमको सर्व प्रथम यह जानने की आवश्यकता है कि शास्त्र में रोगों का विचार किस पद्धति से किया जाता है? किन-किन भावों का व ग्रहों की इसमें प्रधान भूमिकाएं हैं? इत्यादि विषयों को समझना होगा। ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार रोगों का विचार इस प्रकार किया जाता है।

1.5.1 आयुर्वेदशास्त्र की दृष्टि में व्याधियां-

आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार रोगों का परिचय शरीर, मन और आत्मा तीनों के संतुलन से जुड़ा होता है। आयुर्वेद रोग को केवल शारीरिक समस्या नहीं मानता बल्कि जीवन शैली में उचित आहार-विहार संयमित जीवन का आभाव एवं मानसिक स्थिति और पर्यावरण से जुड़ा हुआ मानता है। यदि जीवन चर्या असंयमित है, साथ ही हमारा परिवेश वातावरण भी प्रतिकूल है। तो इससे त्रिदोष (वात-पित्त-काफ) अनियंत्रित हो जायेंगे जिससे शरीर में विविध व्याधियां हो जाती है। वहीँ ज्योतिषशास्त्र कर्मजन्य व्याधियों की बात करता है। प्राय: हम देखते हैं कि जो लोग उचित आहार-विहार करते हैं। वे भी कभी अनायास बीमार हो जाते हैं। तो उसका कारण निश्चित ग्रह योग कहलाता है। इसलिए हमारे शास्त्र कहते हैं- **"अवश्यमेव भुक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"**। तथा **"पूर्वजन्मकृतं पापं व्यधिरूपेण जायते"।**

1.5.2 आयुर्वेद में रोग की परिभाषा-

चरक संहिता में महर्षि चरक कह रहे हैं कि **"दोष-धातु-मल-मूलंहि शरीरम्"** अर्थात शरीर का आधार तीन चीज़ें पर निर्भर हैं-

- दोष (वात, पित्त, कफ)
- धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र)
- मल (मल, मूत्र, स्वेद)

इनके असंतुलन से ही रोग उत्पन्न होते हैं।

1.5.3 आयुर्वेद के अनुसार रोग के मुख्य कारण-

आयुर्वेद शास्त्र में व्याधियों के प्रमुख कारण निम्नलिखित बताये गए हैं-

1. त्रिदोषों का असंतुलन होना-

वात दोष ↑ ⟶ प्रमुखत: वात के प्रकुपित होने से जोड़ों का दर्द, गैस, कंपकंपी आदि होती है। लेकिन सिर्फ ये तो सामान्य लक्षण हैं वात दोष के प्रकुपित होने से अस्सी प्रकार की व्याधियां होती है।

पित्त दोष ↑ ⟶ के प्रकुपित होने पर ये लक्षण दीखते हैं जो कि (सामान्य जलन, बुखार, त्वचा रोग) लक्षण है ;परन्तु पित्त से चालीस प्रकार के रोग होते हैं।

कफ दोष ↑ ⟶ कफ के सामान्य लक्षण - जुकाम, मोटापा, सुस्ती तथा बीस प्रकार के कफ की व्याधियां होती है।

2. असंतुलित आहार
   अत्यधिक तला-भुना, बासी, या विरुद्ध आहार
3. गलत दिनचर्या
   नींद की कमी, अधिक जागरण, व्यायाम की कमी
4. मानसिक कारण
   चिंता, क्रोध, भय, शोक
5. पर्यावरणीय कारण
   मौसम परिवर्तन, प्रदूषण

1.5.4 आयुर्वेद में रोगों का वर्गीकरण-

1. दोषज रोग
   वातज, पित्तज, कफज या मिश्रित दोष से उत्पन्न
2. आगंतुक रोग
   बाहरी कारणों से (चोट, विष, संक्रमण)
3. मानसिक रोग
   काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से उत्पन्न
4. जन्मजात रोग
   जन्म से मौजूद रोग

आयुर्वेद में रोग निवारण के सिद्धांत

- निदान परिहार – रोग के कारणों से बचाव
- शोधन – पंचकर्म द्वारा दोषों की शुद्धि
- शमन – औषधि, आहार और विहार से संतुलन
- पथ्य-अपथ्य – उचित आहार-विहार का पालन

आयुर्वेद का लक्ष्य-**"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्य विकार प्रशमनं"**
अर्थात स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी के रोग का नाश करना।

1.6 ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि में व्याधियां

षष्ठ (रोग) भाव, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, व्यय तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह, षष्ठेश (रोगेश) से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव से रोग विचार किया जाता है। 1 फलदीपिका14/1 इसके अतिरिक्त पाप प्रभाव युक्त राशियाँ एवं भाव, नीच राशि- गत, अस्तं गत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही, ग्रह, क्रूरषष्ट्याशगत ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्ट कारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं। इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की चर्या प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है। और बहुलांश में रोग के साध्य-असाध्यत्व का निर्णय किया जाता है। इस विषय को विस्तार पूर्वक जानने से पहले ये जानना आवश्यक है कि ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है, अपितु सूचक हैं।

अर्थात ग्रह किसी को सुख-दु:ख नहीं देते हैं। आर्थात आने वाले सुख-दुःख की सूचना देते हैं। वस्तुत: ग्रह अपनी गति, स्थिति एवं युति के द्वारा यह व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों का हम पर सतत एवं सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है। परन्तु यह स्मरण रखने योग्य बात है कि हम इस प्रभाव के हेतु भूत भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों में विपर्यय कर इसे अन्यथा सिद्ध कर सकते हैं। ग्रह चिकित्सा दूषित फल को दूर करने के सभी उपाय इस सिद्धांत पर आधारित हैं। इस विषय पर विस्तार से विचार करने के पूर्व एक बात और स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है, अपितु सूचक हैं। अर्थात् ग्रह किसी को सुख- दुःख की सूचना देते हैं। इस सिद्धांत को और अधिक स्पष्ट करने के लिए ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए जो रत्न धारण की परिपाटी ज्योतिष-शास्त्र में प्रचलित है, उसे उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है। प्राय: सौरमण्डलीय वातावरण का प्रभाव पाषाणों के रंग-रूप, आकार-प्रकार तथा पृथ्वी,जल, अग्नि, वायु आदि तत्त्व की प्रधानता पर पड़ता है। सत्व गुण वाली रश्मियों के ग्रहों के प्रभाव में उत्पन्न व्यक्ति को वैसे ही रश्मियों के वातावरण में उत्पन्न रत्नं धारण कराया जाय, तो वह व्यक्ति नैसर्गिक क्षमताओं में वृद्धि कर उचित परिणाम देगा। यदि व्यक्ति को ग्रहों के विपरीत प्रभावोत्पन्न धारण करना इस शास्त्र का अभिप्रेत है। एक अन्य प्रकार यह है कि ग्रहों के जिन तत्वों के प्रभाव से जो रत्न विशेष प्रभावित हैं, उनका प्रयोग उस ग्रह के तत्व के अभाव में उत्पन्न मनुष्य पर किया जाय तो वह क्षतिपूर्ति के सिद्धातानुसार उस व्यक्ति को उचित शक्ति देने वाला होगा उदाहरणार्थ कृष्णपक्ष में उत्पन्न जिन व्यक्तियों को चंद्रमा का अरिष्ट होता है, अर्थात जिन्हें चन्द्रबल या चन्द्रमा की अमृत रश्मियों की शक्ति उपलब्ध नहीं होती, उनके शरीर में कैल्शियम चूने की अल्पता रहती है। ऐसी अवस्था में चन्द्र प्रभाव जन्य उक्त कमी को पूरा करने के लिए मोक्तिक मणि का प्रयोग लाभ कारी होता है। यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्र चन्द्रमा के कष्ट से पीड़ित व्यक्ति को मोती के प्रयोग का निर्देश देता है। यह प्रयोग रत्नधारण या रत्नजन्य औषधि के रूप में किया जा सकता है। 'मुक्ता भस्म, मुक्ता पिस्टी इत्यादि औषधि चन्द्र जन्य रोगों में लाभकारी है। इसी क्रम में अन्य ग्रहों से सम्बन्धित मणि रत्न औषधि का भी प्रयोग होता है। जिसके विषय में हम आगे की इकाईयों में जानेगें।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार गुण कितने प्रकार के होते हैं?
2. मणि, मन्त्र औषधि को क्या कहा जाता है?
3. आचार्य वाराहमिहिर का काल कौन सा है?
4. ग्रह, योग, दशा, गोचर का फल किस आधार पर किया जाता है?

1.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने चिकित्सा ज्योतिष के विषय में विस्तृत रूप से जाना कि किस प्रकार ग्रहों की रश्मियों का प्रभाव मानव पर पड़ता है। और उसका शुभाशुभत्व के कारण रुग्णता और स्वस्थता का क्रम चलता है। इसी प्रकार कौन-कौन से भाव, ग्रह, राशियाँ रोग प्रद स्थिति उत्पन्न करती है। तथा उसके साध्यता-असाध्यता के क्या लक्षण हैं। इत्यादि विषयों का सम्यक अध्ययन किया जाता है, इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप को चिकित्सा ज्योतिष के स्वरुप को समझने में सहायता मिलेगी।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तीन (सत्व , रज , तम)
2. ग्रह चिकित्सा
3. 505 ई.
4. त्रिविध कर्माश्रित

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

1. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत (प्रो.शुकदेव चतुर्वेद)
2. चरक संहिता सूत्र स्थान/सुश्रुत संहिता
3. प्रश्नमार्ग
4. माधव निदान
5. गदावाली
6. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार (प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी श्री ला.ब. शा. रा. सं. विद्यापीठ नई-दिल्ली)
7. वीर सिंहावलोक
8. स्वस्थ वृत्त विज्ञान (डॉ. राम हर्ष सिंह) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम, दिल्ली।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्रिविध कर्मों का सविस्तार परिचय दीजिए।
2. रोगों का कारकत्व करने वाले भावों व ग्रहों का परिचय दीजिए।
3. चिकित्सा ज्योतिष की आज के परिप्रेक्ष्य में क्या भूमिका हो सकती है स्पष्ट करें।

इकाई- 2 कारण रोग

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 कारण रोग
2.4 रोगों के मुख्य कारण
2.5 आयुर्वेद एवं ज्योतिषी दृष्टि में रोग विचार
2.6 रोगों के प्रमुख सिद्धान्त
2.7 रोगोत्पत्ति का समयादि परिज्ञान
2.8 सारांश
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई **"कारण रोग"** चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त **(BASL (N) 321)** से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने आयुर्वेदीय दृष्टि में रोग, चिकित्सा के भेद से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में कारण रोग पर प्रकाश डाला गया है। मानव मन में उत्पन्न होने वाले समस्त भाव विकार व उनसे होने वाले कष्ट एवं अनुभूति को ही रोग कहते हैं। इन रोगों की उत्पत्ति के क्या कारण हैं? उनके लक्षण, भेद एवं चिकित्सा विधि में ज्योतिष और आयुर्वेद में कितनी समानता है? इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकेंगे साथ ही इन सब विषयों पर हम विस्तार से विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ❖ रोग किसे कहते हैं? यह जान सकेंगे।
- ❖ रोगों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण क्या है? इस विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ आयुर्वेद एवं ज्योतिष का क्या सम्बन्ध है? इस विषय पर दृष्टिपात कर सकेंगे।
- ❖ रोगों के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
- ❖ रोगों की उत्पत्ति का समय एवं उपचार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.3 कारण रोग

रोगों के मुख्य कारण-

'कर्मजाव्याधय: केचिद् दोषजा: सन्ति चापरे' आयुर्वेद के मतानुसार कर्म एवं दोष प्रकोप को रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है। प्रायः अव्यवस्थित आहार एवं विहार से रोगों का जन्म होता है। भारतीय संस्कृति में ऋतुओं का बड़ा महत्व है। आयुर्वेद एवं ऋतु का भी अपने आप में विशेष महत्व है। मनुष्य जब ऋतु के अनुरूप अपनी दिनचर्या को करता है, तो रोगजन्य कष्ट की सम्भावना न्यून हो जाती है। फिर भी यदि रोग हो जाए तो उस रोग को कर्म जन्य रोग माना जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र में जो कर्म जन्य रोगों के कारण कर्म माना गया है। वह संचित कर्म ही है जो व्यक्ति का प्रारब्ध भी है। तथा गलत आहार-विहार आदि क्रियमाण कर्म है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने मनुष्य के पूर्व अर्जित कर्म तथा जन्मान्तर में विहित पाप को रोग का कारण माना है। कहा भी गया है- **'जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण ज्ञायते'।**

शातातपीय तन्त्र में कहा गया है कि पूर्वजन्म में किया गया पाप कर्म ही इस जन्म में विभिन्न रोगों के रूप में उत्पन्न होता है।

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छादिभि: शम:।।
कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा।
मूत्रकृच्छाश्मरीकासा अतिसारभगन्दरौ।।

आचार्य सुश्रुत ने तो कुष्ठ रोग को कर्म जन्म व्याधि का मुख्य उदाहरण माना है। यथा-
ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभि:।

कर्मभि: पापरोगस्य प्राहु: कुष्ठस्य सम्भवम्।।

अर्थात् ब्राह्मण, स्त्री एवं सज्जन पुरुषों की हत्या तथा दूसरों के धन का अपहरण करने जैसे पाप कर्म करने से कुष्ठ रोग होता है।

त्रिशठाचार्य का मत है कि उदररोग, गुदारोग, उन्माद, अपस्मार, पंगुता, कर्णरोग, वाग्दोष, प्रमेह, भगन्दर, प्रदर, वायु विकार, कुष्ट, अन्धता, मुखरोग, नासारोग, अर्श, विपची, व्रण, बाल्मीक, विपर्ष, देहकम्प, पक्षाघात, गलगण्ड, नपुंसकता, रक्तदोष तथा दन्त रोग आदि समस्त रोग गुरुपत्नीगमन, दूसरे के धन का अपहरण एवं ब्रह्महत्या जैसे दुष्कर्म के प्रभाव उत्पन्न होते हैं। यथा—

जठरगुदजोन्मादापस्मृत्यसृगुत्सृतिपंगुता-श्रुतिविकलतावाग्वैकल्यप्रमेहभगन्दरा:।।
प्रदरपवनव्याधिश्वित्रक्षयक्षणदान्धता,
तिमिरवदनघ्राणर्शांसि श्वयथुविपचीग्रणा।।
वल्मीककाकिणिकशंखकपुडरीक-रक्तार्बुदव्रणविसर्पवपु: प्रकम्पा:।
पक्षाभिघातनलगंडगलग्राहश्म, दंडापमानकसमीरणशाकणिताद्या:।।
दन्तामया: स्युरपरद्रविणापहारगुर्वङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्ये।
दुष्कर्म भिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते, नोपक्रमेण भिषजामुपयान्ति सिद्धिम्।।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य का इस जन्म तथा जन्मान्तर में किया गया अशुभ कर्म ही रोगोत्पत्ति का मुख्य कारण है। ज्योतिषशास्त्र में कर्मजनित व्याधियों का मुख्य कारण उन्माद को माना गया है, इसके कारण, भेद, लक्षण एवं चिकित्सा का यहां विवेचन किया जा रहा है।

उन्माद का मुख्य कारण-

हर्षेच्छामयशोकादेर्विरूद्धाशुचिभोजनात्।
गुरूदेवादिकोपाच्च पंचोन्मादा भवन्त्यथ।।

जब हर्ष, इच्छा, भय एवं शोक की प्रबलता से, विरूद्ध एवं अपवित्र भोजन से तथा गुरु देवता आदि के कोप से उन्माद होता है। आचार्य चरक ने भी उन्माद रोग के यही कारण बताए हैं-

विरूद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरूद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वा मनोऽभिधातो विषमाश्च चेष्टा:।।

उन्माद के मुख्य भेद—

प्रश्नमार्ग में उन्माद के पांच भेद बतलाये गये हैं- **'त्रिदोषजा: सन्निपाता: आगन्तव इति स्मृता'।**

1. वातजन्य
2. पित्तजन्य
3. कफजन्य
4. सन्निपातजन्य
5. आगन्तुक जन्य

उन्मादों के लक्षण-

प्रश्नमार्ग कार कहते हैं कि हंसना, चिल्लाना, रोना, विलखना, गाना, नाचना, एक जगह पर ना रुकना, हाथ-पैर आदि अंगों को फेंकना पटकना, शरीर का लाल रंग होना, कमजोरी होना,

कमजोर होने पर भी बल होना तथा अधिक बड़बड़ाना यह सब वातजन्य उन्माद के लक्षण है। आचार्य चरक ने वातजन्य उन्माद के ये ही लक्षण बताए हैं।

अवस्थानहासस्मृतिनृत्यगीतवागड्गविक्षेपणरादनानि।
पारूष्य काश्यर्यारूणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम्।।

फलित ज्योतिष के ग्रंथों में पित्तजन्य उन्माद के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं। सारंभ (नेत्रों की लालिमा) अमर्ष (असहिष्णुता) विदग्धता, अभिद्रवण (दौडकर चलना) तर्जन (दूसरों को डराना धमकाना) छाया, शीतल वस्तु एवं शीतल जल की इच्छा तथा शरीर का पीला पड़ना ये पित्तजन्य उन्माद के लक्षण है। आचार्य चरक ने भी यही कहा है। ज्योतिष ग्रंथों में बताया गया है कि कफजन्य उन्माद रोगी को स्त्री तथा एकांत स्थान प्रिय होता है। उसे निद्रा अधिक आती है। और अरूचि रहती है। वह कम कम बोलता है, मुंह से लार बहती है, भोजन के बाद उन्माद का बैग बढ़ जाता है। तथा उसके नाखून सफेद पड़ जाते हैं।

नारीविविक्तप्रियता निद्रारोचौ मनाग्वचः।
लाला छर्दिर्बले भुक्तो नखादिषु च शुक्लता च।।

वात, पित्त, कफ जन्य उन्माद के जो पूर्व लक्षण बताए गए हैं वह सब सन्निपात जन्य उन्माद में भी दिखाई देते हैं। यह चिकित्सा की दृष्टि से वर्ज्य होता है। क्योंकि इसमें एक दोष की चिकित्सा कराने से दूसरा दोष कुपित हो जाता है। अतः यह उन्माद असाध्य होने कारण वर्ज्य कहलाता है। देवता, राक्षस आदि के कोप से उत्पन्न उन्माद को आगंतुक उन्माद कहते हैं। आचार्य चरक का कहना है कि देवता आदि के कोप से उत्पन्न उन्माद जन्मांतर में किए गए अनुचित कर्मो के प्रभाववश यह उन्माद होता है।

उन्माद का उपचार-

उन्माद के उपचार के बारे में भी ज्योतिष एवं आयुर्वेद के दृष्टिकोण में पूरी तरह समानता है। फलित ज्योतिष के ग्रंथों में बताया गया है कि वातजन्य उन्माद में स्नेहपान, पित्तजन्य उन्माद में विरेचन, कफ जन्य उन्माद में नस्य एवं वमन तथा आगंतुक उन्माद में पूर्वोक्त समस्त क्रियाएं करनी चाहिए।

वातोन्मादे स्नेहपानं पित्तोन्मादे विरेचनम्।
श्लेष्मके नस्यवमनमागन्तुष्वखिला: क्रिया:।।

उक्त क्रियाओं के अलावा जातक ग्रंथों में सभी प्रकार के उन्माद की एक रामबाण औषधि बताई गई है, वह है कल्याण घृत। यद्यपि उन्माद को ठीक करने के लिए किस औषधि का किस मात्रा में किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए यह आयुर्वेद शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। इसलिए ज्योतिष के ग्रंथों में रोगों की औषधियों की विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं की गई है। फिर भी जातक ग्रंथों में विविध प्रसंगों में कुछ रोगों की रामबाण औषधि बताई गई है। आचार्य कल्याण बर्म कहते हैं कि जैसे कल्याण का सेवन उन्माद को नष्ट कर देता है, वैसे ही चंद्रमा से षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम स्थान में स्थित शुभ ग्रह समस्त अरिष्टों के प्रभाव को नष्ट कर देता है। आचार्य चरक, सुश्रुत ने पांच प्रकार के उन्मादों के लिए कल्याणधृत एवं महाकल्याणधृत के सेवन को अत्यंत लाभदायक माना है। इस प्रकार फलित ज्योतिष के ग्रंथों में रोग विचार की, रोगों के कारण, लक्षण, भेद एवं उपचार विधि में पर्याप्त समानता पाई जाती है।

2.4 आयुर्वेद एवं ज्योतिषी दृष्टि में रोग विचार

भगवान धन्वन्तरी के कथनानुसार किसी भी रोगी मनुष्य की चिकित्सा करने से पूर्व उसकी आयु का परीक्षण करना आवश्यक है। क्योंकि आयु के रहते ही चिकित्सा के उपचार द्वारा उसे ठीक किया जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र में भी रोग के विषय में जानने से पूर्व उसकी आयु पर विचार किया जाता है।–

आयु: पूर्वं परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
अनायुषां तु मर्त्यानां लक्षणै: किं प्रयोजतम्।
आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना
स्वस्थमुद्दिश्य वा प्रश्न एव वातुरमित्ययम्।।

आयुर्वेद ने जिन रोगों को कर्मजन्य मानकर असाध्य कह दिया तथा ऐसे रोगों के निदान एवं चिकित्सा विधि पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला उन कर्म जन्य रोगों के होने की संभावना उसके प्रारंभ एवं समाप्ति के काल तथा उसकी चिकित्सा विधि का ज्योतिषशास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है। ज्योतिषशास्त्र में यह बतलाने में समर्थ है कि किस व्यक्ति के पूर्व अर्जित शुभ कर्मों के प्रभाव किस समय में कौन सा रोग होगा तथा उसका क्या परिणाम निकलेगा। जिस प्रकार दोष जन्य व्याधियों का आयुर्वेदशास्त्र में विस्तार पूर्वक विचार किया गया है उसी प्रकार कर्मजन्य व्याधियों का ज्योतिषशास्त्र में सांगोपांग विवेचन किया गया है। आयुर्वेदशास्त्र में स्वास्थ्य रक्षण, औषधि का सेवन, औषधि का निर्माण एवं शल्य क्रिया को विशेष रुप से बतला कर उसे उपयोगी माना गया है। काल के अतियोग, अयोग एवं मिथ्यायोग से रोग उत्पन्न होता है। अविकृत ऋतु में औषधि का संचय एवं निर्माण करने से ही वह गुणकारी होते है। तथा वह ऋतु विकृति के उत्पन्न रोगों को नष्ट कर देती है। दिन-रात सर्दी-गर्मी बरसात के प्रभाव को ध्यान में रखकर शल्यक्रिया की जाती है। आयुर्वेदशास्त्र में तो यहां तक कहा है कि काल की विशेषताएं अपने स्वभाव से ही दोषों का संचय, प्रकोप, प्रशमन एवं प्रतिकार कर देती है। अतः योग्य चिकित्सक को कॉलकृत आस्थाओं का ध्यान रखकर ही चिकित्सा करनी चाहिए किंतु काल का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही होता है। उपचार के लिए परम उपयोगी दिन-रात पक्ष, मास आदि की जानकारी ज्योतिषशास्त्र पर ही संभव है। अतः ज्योतिषशास्त्र ज्ञान के बिना न तो यथा समय औषधि संचय या औषधि निर्माण ही संभव है और ना ही शल्यिक्रिया या चिकित्सा ही की जा सकती है। अतः जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष नियमों के ज्ञान पर औषध निर्माण या चिकित्सा करते हैं वही अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुत: आयुर्वेद ज्योतिषशास्त्र का चचेरा भाई है। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के द्वारा औषधि की चर्चा, चेष्टा, आकृति सभी लक्षणों एवं उसकी कुंडली में रोगों की विविध योगों के अध्ययन कर यह जाना जा सकता है कि यह रोग की मर्यादा क्या होगी, यह रोग कब ठीक होगा, चिकित्सा करने वाले चिकित्सक के परामर्श एवं प्रचलित औषधियों द्वारा लाभ होगा या नहीं इत्यादि यह कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाधान आयुर्वेद शास्त्र में नहीं किया गया है, किंतु ज्योतिष शास्त्र में इसका विस्तार पूर्वक शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इसलिए प्राचीन काल में ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान की चिकित्सा में परम उपयोगिता को ध्यान रखकर 'ज्योर्तिवैद्यौ निरन्तरौ' की कहावत प्रचलित है। शास्त्रों के ज्ञान से एक सामान्य व्यक्ति भी अनेक प्रकार के रोगों से बच सकता है क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य एवं चंद्रमा के विशेष प्रभाव से उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार चंद्रमा अपनी गति स्थिति, कलाओं की ह्रास बृद्धि द्वारा समुद्र के जल में उथल पुथल मचा डालता है। उसी प्रकार यह शरीर के रुधिर प्रवाह में स्नायुमंडल तथा मनोववृत्तियों में अपना प्रभाव डालकर निर्बल मनुष्यों को रोगी बना

देता है। अतः ज्योतिष द्वारा चंद्रमा के तत्वों को जानकर अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को वैसे तत्व वाले पदार्थों के सेवन पर अनियंत्रण रखकर मनुष्य स्वयं को रोगों के आक्रमण से बचा सकता है। कालविज्ञान, कर्मफलज्ञान, और सर्वांग शरीर लक्षण एवं प्रत्येक कार्य को करने का उचित समय ये सब ज्योतिषशास्त्र की आयुर्वेद को ऐसी देन है जिसका भारतीय चिकित्सा पद्धति में पग-पग पर उपयोग किया जाता है।

2.5 रोगों के प्रमुख सिद्धान्त

भारतीय संस्कृति के अनुसार त्रिगुणत्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत् सत्व राज एवं तमोमय है। ज्योतिषशास्त्र में भी सूर्य आदि ग्रहों का इन तीनों गुणों में वर्गीकरण का प्रमुख योगदान रहता है। जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है। उनकी अमृतमय किरणे, जिन में रजोगुण अधिक रहता है उनकी उभय गुण मिश्रित किरणें, जिनमें तमोगुण अधिक रहता है उनकी विषम किरणें एवं जिन में तीनों गुणों की अल्पता रहती है उनकी गुण हीन किरणें मानी गई है। ग्रहों के शुभ-अशुभ का विभाजन भी इन किरणों के गुणों से ही हुआ है। आकाश में ग्रहों की गति एवं युति से रशियां परस्पर मिलती रहती हैं और एक दूसरे के गुणों को प्रभावित करती रहती हैं। रश्मिविश्लेषण का सिद्धांत बतलाता है कि प्रत्येक ग्रहों की राशियों में स्थान एवं काल विशेष पर उनके गुणों में ह्राय-वृद्धि होते रहती हैं, जिसे ज्योतिषशास्त्र की परिभाषा में स्थान बल, दिक् बल, काल बल एवं चेष्टा बल कहा गया है। अतः ग्रहों के शुभाशुभत्व का विचार करते समय उनके बलाबल का विचार भी परम आवश्यक माना गया है। ग्रहों की सौम्या एवं क्रूर गति के प्रभाव से ही भूमंडल पर रहने वाले समस्त चराचर पर इनका प्रभाव रहता है। ग्रहों की गति एवं स्थिति की विलक्षणता के कारण यह प्रभाव समस्त पृथ्वी पर एक सा नहीं होता क्योंकि एक कालावच्छेदन दो विभिन्न देशों पर भिन्न-भिन्न ग्रहों के रश्मियां एक जैसी नहीं पड़ती विभिन्न देशों में सूर्य एवं चंद्रमा आदि ग्रहों के उदय अस्त की भिन्नता या देशांतर संस्कार को यहां साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अत: यह निष्कर्ष आनायास ही समझ में आ जाता है कि स्थान विशेष का ग्रह राशियों के वातावरण की अपनी निजी विशेषता के कारण वहां अत्पन्न जातक अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्मे व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव, भिन्न आकृति, विलक्षण आदि गुणों से युक्त होता है। उत्पत्ति के समय में जिन जिन रश्मि वाले ग्रहों की प्रधानता होती है जातक का स्वभाव एवं स्वास्थ्य आदि वैसा ही बन जाता है। ग्रह मानव के स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालकर किन किन रोगों को उत्पन्न करते हैं। अब हम इस विषय की ओर चलेंगे।

रोगों का वर्गीकरण-

ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों में रोगों का गंभीरता पूर्वक विचार करने से पहले उनके भेदों का विचार किया गया है। ज्योतिषशास्त्र में रागों को दो प्रकार से माना गया है- 1. सहज 2. आगन्तुक

1. सहज- जन्मजात रोग को सहज रोग कहते हैं। सहज के दो भेद होते हैं- 1. शारीरिक 2. मानसिक रोग लूलापन, लंगड़ापन, अंधत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकता एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक रोग जन्मजात होते हैं। जड़ता, उन्माद एवं पागलपन आदि कुछ मानसिक रोग भी जन्मजात होते हैं। इस प्रकार के समस्त जन्मजात रोगों को सहज रोग कहा जाता है।

2. आगन्तुक- जन्म के बाद होने वाले रोगों को आगंतुक लोग कहते हैं। आगंतुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं- दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य। शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओं द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं।

तथा बाधक ग्रह योग के द्वारा उत्पन्न रोग अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहलाते हैं। इन रोगों का कारण पूर्वार्जित कर्म माना गया है। उक्त दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी शारीरिक एवं मानसिक यह दो भेद माने गए हैं।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रोग विचार-

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रोग का विचार हम इस प्रकार करते हैं। षष्टम भाव, षष्टम भाव में स्थित ग्रह, द्वादश भाव एवं अष्टम भाव में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह रोगेश से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव से रोग का विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त पाप ग्रह से युक्त राशियों एवं भाव, नीच राशिगत ग्रह तथा निर्मल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, मारक ग्रह एवं बलारिष्ट कारक ग्रह भी रोगों के कारण माने गए हैं। इन ग्रहों के शुभ अशुभ एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग का तथा रोगी की चर्या, प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों को रोग कारक बनाने वाले निम्नलिखित हेतु बताए गए हैं-

1. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना-

ज्योतिषशास्त्र में लग्न को शरीर रूप में माना गया है। अतः लग्न एवं लग्नेश पर पाप ग्रह का प्रभाव शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं होता है। अतः जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो जाता है तो वह अपनी अस्थि आदि धातुओं का विशेष या पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करता है।

लग्न ग्रह	**धातु**
सूर्य	अस्ति
चन्द्रमा	रक्त
मंगल	मांस
बुध	त्वचा
गुरु	वसा
शुक्र	वीर्य
सनी	स्नायु

जब कोई ग्रहण लग्न में स्थित हो या लग्नेश हो तो वह शरीर के उन तत्वों का विशेष प्रतिनिधित्व करता है, जो शरीर में अधिक व्यापक हैं। उदाहरण के लिए जैसे सूर्य- आंख, हृदय एवं हड्डी इन सब का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा मन का, फेफड़ों का, रक्त का प्रतिनिधित्व करते हैं। मंगल मांस एवं मज्जा का प्रतिनिधित्व करते हैं। बुध वाक्शक्ति, श्रवणशक्ति एवं त्वचा का प्रतिनिधित्व करते हैं। गुरु उदर, चर्बी का प्रतिनिधित्व करते हैं। शुक्र नेत्र, मूत्र एवं वीर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। शनि पैर एवं स्नायु का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए जैसे कह सकते हैं कि लग्न में स्थिति या लग्नेश होकर सूर्य हड्डी का विशेष प्रतिनिधित्व करेगा क्योंकि शरीर में हड्डी, आंख एवं हृदय की अपेक्षा अधिक व्यापक है। इसी प्रकार चन्द्रमा मन, फेफडे एवं रक्त इन सब को प्रदर्शित करते हैं परंतु लग्न में स्थिति लग्नेश होने पर रक्त का विशेष प्रतिनिधि हो जाता है।

जब कोई ग्रह लग्न में स्थित या लग्नेश होकर निर्बल एवं पाप ग्रह से प्रभावित युक्त होता है तो तब ग्रहों से निम्नोक्त रोगों का अनुमान लगाया जा सकता है-

सूर्य से अस्थि, ज्वर, हड्डी, दुर्बलता आदि। चन्द्रमा से रक्तविकार, रक्तचाप आदि। मंगल से सूखा रोग, बुध से त्वचा रोग, दाद, खाज, खुजली, फुंसी, फोड़ा इत्यादि। गुरु से दुर्बलता,

स्थूलता। शुक्र से वीर्य विकार, प्रमेह, मधुमेह, धातु क्षय आदि। शनि स्नायु दुर्बलता, फालिस, लकवा आदि का विचार किया जाता है।

2. नीच राशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता-

नीच राशि शत्रुराशिगत एवं अन्य प्रकार से निर्बल ग्रह शरीर में अपनी धातु की अपेक्षित पूर्ति नहीं कर पाता तथा वह जिन अंगों का प्रतिनिधित्व करता है, उनका भी सम्यक विकास नहीं होने देता है। इस प्रकार का ग्रह अपने तत्व के अभाव द्वारा कारकत्व के अनुसार अंग या धातु में विकार उत्पन्न कर रोग देता है। जैसे-

सूर्य यदि नीच राशि गत या निर्बल ग्रह हो तो पित्त, ज्वर, दाह, नेत्र पीड़ा एवं हृदय दुर्बलता आदि रोगों को जन्म देता है। चन्द्रमा कफरोग, शीतज्वर, उन्माद, जलोदर आदि लोगों को देता है। मंगल जलना, गिरना, गुप्त रोग आदि को देता है। बुध त्रिदोष, चर्म रोग, कर्ण रोग को देते हैं। गुरु सूजन, नितंब एवं पैरों में पीड़ा को देते हैं। शुक्र वीर्यविकार, नेत्र रोग, मुख रोग, मूत्र रोग आदि को देते हैं। शनि दर्द, वायु विकार, स्नायुविकार आदि के देते है।

3. पाप ग्रहों से प्रभावित होना—

पाप ग्रहों के साथ होना या पाप ग्रहों से दृष्ट होना पाप प्रभाव कहलाता है। जिस भाव का प्रतिनिधि ग्रह पाप ग्रहों से दृष्ट है या युत होता है वह अपने भाव से संबंधित अंग रोग उत्पन्न करता है।

4. रोग भाव का प्रतिनिधित्व—

षष्ठ स्थान को रोग का स्थान कहां गया है, अत: षष्ठेश रोग को देने वाला होता है। यह छठे स्थान में स्थित होकर स्वयं की प्रकृति एवं कारकत्व के अनुसार रोग देता है। जैसे- षष्टम स्थान में स्थित चंद्रमा कफ विकार, शीत ज्वर एवं नेत्र विकार करता है। किन्तु षष्ठेश का किसी अन्य भाव में परिवर्तन योग हो तो वह भाव से संबंध व्यक्ति का अंग को रोक देगा। जैसे- चतुर्थेश से माता को रोग दे सकता है। और अष्टमेश से नेत्र पीड़ा या गुप्तांग से संबंधित रोग को दे सकता है। षष्टम एवं अष्टम स्थान मैं स्थित षष्ठेश विभिन्न ग्रहों से युक्त होकर विभिन्न स्थानों में रोग उत्पन्न करने वाला होता है। जैसे- सूर्य से युक्त हो तो सिर पर, चन्द्रमा से युक्त हो तो मुख में मंगल से युक्त हो तो कंठ में, बुध से युक्त हो तो नाभि में, गुरु संयुक्त हो तो नासिका में, शुक्र संयुक्त हो तो नेत्र में, शनि संयुक्त हो तो पैर में तथा राहु केतु युक्त होकर पेट में रोग उत्पन्न करता है।

तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भैमेन ज्ञेन नाभिषु
गुरूणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे ।
शनिना राहुणा कुक्षां केतुना च तथा भवेत्।।

5. अष्टम एवं व्ययभाव का प्रतिनिधित्व-

अष्टम एवं स्थान रोग कारक स्थान है। अतः इन के स्वामी ग्रह भी रोग कारक होते हैं। कदाचित इन स्थानों के स्वामी मंगल या शनि हो तो वह और अधिक शक्ति प्रदान कर जिस भाव राशि में अपना युति दृष्टि द्वारा प्रभाव को विनियोग करेंगे, उस राशि भाव संबंधित अंग में रोग उत्पत्ति कर देंगे केवल अष्टमेश या द्वादश इसका प्रभाव रोग के आधारभूत कारणों को ही उत्पन्न करने का कुछ प्रयास कर सकता है, जब तक कि उसमें किसी प्रकार का प्रभाव निहित न

हो चुका हो, महर्षि पाराशर के अनुसार सूर्य चंद्रमा एवं लग्नेश अष्टम भाव के स्वामी होने पर भी अशुभ फल दाता नहीं होते हैं। तथा व्ययेश त्रिकोण भाव का स्वामी होने पर शुभ फलदायक हो जाता है। यदि सूर्य और चन्द्रमा व्ययेश होकर त्रिकोणेश से संबंध करें तो वे असुफल नहीं देते। अतः अष्टमेश व्ययेश से रोग देने की क्षमता का निश्चय करते समय यह सब ध्यान में रखना चाहिए।

6. षष्ठ भाव में स्थिति-

छठे भाव को रोग कारक माना गया है। यह ग्रह जिस राशि एवं भाव का स्वामी हो या कारक हो वह राशि और भाव काल पुरुष के जिस अंग में पढ़ती हो अथवा जिस अंग आदि का कार्य को उस अंग में रोग उत्पत्ति करता है। किंतु यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसा ग्रह जब पाप प्रभाव में हो तभी रोग उत्पन्न कर सकता है। शुभ प्रभाव होने पर किसी भी प्रकार के रोग उत्पन्न नहीं होती है। किसी भाव का स्वामी छठे, आठवें, बारहवें भाव में स्थित होकर उस भाव के शुभ फल को नष्ट कर देता है। जैसे छठा भाव शारीरिक प्रगति, उन्नति एवं पुष्टि सब को रोकता है। यह दुर्बलता वश रोग का कारक हो जाता है। ज्योतिषी ग्रंथों में कहा गया है कि पंचम भाव का स्वामी छठे भाव में होकर पुत्र कारक गुरु एवं सूर्य से युक्त हो तो उसकी पत्नी को गर्वस्राव होता है। अथवा संतान होने में कष्ट अनुभूति होती है। आशय स्पष्ट है कि संतति भाव का स्वामी एवं कारक यह दोनों जब छठे भाव में रहेंगे तब गर्भ की पुष्टि या वृद्धि होने में कठिनाइयां होंगी अपितु उपर्युक्त सिद्धांत अनुसार पंचम भाव का शुभ फल नष्ट होने से इस प्रकार की संभावना बनती है।

7. मारकत्व का प्रभाव-

ज्योतिषशास्त्र के सभी ग्रंथों में बालारिष्ट अर्थात् बाल्यावस्था में अकाल मृत्यु का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस अरिष्ट योग के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

1. लग्न या लग्नेश का निर्मल होना- लग्न या लग्नेश के बलाबल से स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि एवं आयु का विचार करते हैं और इन दोनों की निर्बलता से मानव को जीवन में मिलने की संभावना नष्ट हो जाती है।

2. अष्टम भाव एवं अष्टमेश के निर्बल होने पर- ज्योतिषशास्त्र में सभी आचार्यों ने अष्टम स्थान को आयु स्थान माना है अतः इसकी निर्बलता भी जीवन के लिए हानिकारक है।

3. चन्द्रमा के क्षीण एवं पाप प्रभाव में होने पर- चंद्रमा बाल्यावस्था का प्रतिनिधि ग्रह है यह पाप प्रभाव द्वारा व्यक्त करता है कि आयु में अवश्य किसी प्रकार का कष्ट होगा।

ग्रहों / भाव के अनुसार रोग विचार-

ग्रह भाव के अनुसार रोग विचार को निम्न तालिका के माध्यम से समझते हैं—

सूर्य- पित्त रोग, उष्ण ज्वर, शरीर जलन, मिर्गी, हृदय रोग, नेत्र रोग, नाभि से नीचे प्रदेश या कोख में पीड़ा, चर्म रोग, अग्नि रोग, ज्वर वृद्धि, अतिसार, चित्त व्याकुलता, शस्त्र एवं व्रण से कष्ट, शिर में पीड़ा आदि।

चन्द्रमा- निद्रा रोग, आलस्य, कफ, अतिसार, मंदाग्नि, अरूचि, पीलिया, रक्त विकार, पांडू रोग, जलोदर, स्त्री जन्य रोग, प्रमेह, वाताधिक्य, मानसिक रोग आदि।

मंगल- पित्त ज्वर, जलन, विषमय, तृष्णा, नेत्र रोग, अपस्मार, खुजली, रक्त विकार, रक्तचाप आदि।

बुध- गले का रोग, नेत्र रोग, भ्रांति, नासिका रोग, त्रिदोष ज्वर, चर्म रोग, पीलिया, खुजली, दाद, उदर विकार, गुप्त रोग, वायु विकार, कुष्ठ, मंदाकिनी, चेचक आदि।

गुरु- पेट संबंधित रोग, टाइफाइड, कर्ण रोग, कफ रोग, ज्वर, सर्दी, हर्निया आदि।

शुक्र- पांडू, कफ एवं वायु विकार, नेत्र रोग, मोतियाबिंद रोग, मूत्र रोग, वीर्य की कमी, संभोग, स्त्री जन्य रोग, मधुमेह, कामजन्य पीड़ा, स्वप्नदोष आदि।

शनि- मानसिक रोग, बौद्धिक रोग, उष्णता रोग, गठिया रोग, हर्निया रोग, गुप्तेन्द्रि में पीड़ा रोग, पीलिया, फालिस, कैंसर रोग आदि।

राहु- कुष्ठ रोग, मानसिक रोग, हृदय रोग, पैर में चोट, कृमि रोग आदि।

केतु- श्वेत कुष्ठ रोग, चर्म रोग, पांडु रोग, मसूरी का रोग, जलोदर रोग आदि।

ग्रहयोग के अनुसार रोग विचार-

ग्रह योग द्वारा रोग के उत्पत्ति काल का ज्ञान होता है। उसके द्वारा जीवन भर रहने वाले रोगों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार ग्रह योग द्वारा रोगोत्पत्ति को इस प्रकार जानने का प्रयास करते हैं-

I. षष्टम भाव एवं षष्ठेश पापयुक्त हो तथा शनि राहु से युक्त दृष्ट हो तो मनुष्य जीवन भर रोगी रहता है।

II. षष्ट भाव में मंगल अष्टम भाव में षष्ठेश हो तो छठे या आठवें वर्ष में ज्वर होता है।

III. षष्ठ भाव में गुरु हो तथा चंद्रमा गुरु की राशि में हो तो 19 या 22 वर्ष में कुष्ठ रोग होता है।

IV. षष्टम भाव में राहु, केतु केन्द्र में शनि एवं अष्टम भाव में लग्नेश हो तो 26 वर्ष में क्षय रोग होता है। द्वादशेश षष्ठ में तथा षष्ठेश द्वादश में हो तो 29 या 30 वें वर्ष में गुल्म रोग होता है।

V. शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो 45 वर्ष में रक्त कुष्ठ रोग होता है।

VI. लग्नेश लग्न में तथा शनि षष्ठ भाव में हो तो 49 वर्षों में बात रोग होता है।

राशियों के अनुसार रोग विचार—

मेषादि राशियों में पाप ग्रह प्रभाववश निम्नलिखित रोगों की उत्पत्ति होती है-

मेष— पित्त ज्वर, तृष्णा, दाह, लू लगना, जठराग्नि संबंधी रोग आदि।

वृष— त्रिदोष जन्य रोग, सन्निपात, नपुंसकता रोग आदि।

मिथुन— श्वास,कास, दमा, कामुकता आदि।

कर्क— पागलपन, उन्माद, वात रोग, अरुचि आदि।

सिंह— ज्वर, स्फोट, स्नायविक तनाव आदि।

कन्या— स्त्रियों के कारण गुप्त रोग आदि।

तुला— सन्निपात, प्रमेह, शरीर का संतुलन न बनने कारण गिरना आदि।

वृश्चिक— पीलिया, पांडु रोग आदि।

धनु— पेड़ से गिरना, पैर एवं कमर में चोट आदि।

मगर— पेट दर्द, पेट में फोड़ा, अरुचि आदि।

कुंभ— खासी, ज्वार, कप, क्षय रोग आदि।

मीन— जलोदर, काफ, शीतविकार आदि।

2.6 रोगोत्पत्ति का समयादि परिज्ञान

रोग की उत्पत्ति समयादि का ज्ञान व्यक्ति के जन्म से अवसान पर्यंत तक चलने वाले रोगों के प्रारंभिक काल का विचार नहीं किया जाता। इन रोगों का विचार ग्रह योग के आधार पर किया जाता है। सभी रोगों के होने की संभावना का विचार रोग कारक ग्रह की दशा, अंतर्दशा, गोचर ग्रह की स्थिति के आधार पर किया जाता है। लम्बे समय तक चलने वाले रोग को ग्रहों की महादशा एवं अंतर्दशा के आधार पर जाना जाता है एवं अल्पकालीन या कम समय के लिए रोग की जानकारी के लिए उनकी प्रत्यंतर एवं सूक्ष्म दशा के आधार पर उन्हें जाना जाता है। ज्योतिषशास्त्र में विंशोत्तरी महादशा की प्रधानता है। जिससे जातक की भावी घटनाओं शुभ अशुभ का विचार हम कर पाते हैं।

दशाओं के आधार पर रोगोत्पत्ति-

ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के शुभाशुभ फल का समय जानने के लिए विंशोत्तरी महादशा की प्रधानता है । मारकेश का निर्णय भी विंशोत्तरी दशा से ही किया जाता है, जो रोगों के साध्यत्व एवं असाध्यत्व के निर्णय में अहम भूमिका प्रस्तुत करता है। अतः रोग की उत्पत्ति में सम्भावित समय का विचार विंशोत्तरी दशा के अनुसार करेंगे। इस दशा में आयु का अधिकतम मान 120 वर्ष मानकर ग्रहों की दशा वर्षों का विभाजन किया गया है। जो इस प्रकार है- सूर्य की दशा 6 वर्ष, चंद्रमा की दशा 10 वर्ष, मंगल की 7 वर्ष, राहु के 18 वर्ष, बृहस्पति की 16 वर्ष, शनि की 19 वर्ष, बुध की 17 वर्ष, केतु की 7 वर्ष, शुक्र की 20 वर्ष माना गया है।

इन दशा का ज्ञान जन्म नक्षत्र के आधार पर किया जाता है। इसलिए कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जन्म होने पर सूर्य की दशा, रोहिणी, हस्त, श्रवण नक्षत्र में जन्म होने से चंद्रमा की दशा, मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा नक्षत्र में जन्म होने से मंगल की दशा, आर्द्रा स्वाति, शतभिषा नक्षत्र में जन्म होने से राहु की दशा, पुनर्वसु, विशाखा, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने से गुरु की महादशा, पुष्य, अनुराधा, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने से शनि की महादशा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती नक्षत्र में जन्म होने से केतु की महादशा तथा भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जन्म होने से शुक्र की महादशा होती है।

रोगोत्पत्ति का समय-

रोग कारक ग्रह से ही संबंधित रोग की समुचित जानकारी को हम जान सकते हैं। ग्रह रोगों को उत्पन्न नहीं करते अपितु उत्पन्न होने वाले रोगों की सूचना देते हैं। अतः प्रत्येक ग्रह के ग्रह योग के आधार पर संबंधित रोग कारक ग्रह के द्वारा उस रोग की उत्पत्ति का समय या काल का निर्धारण किया जाता है। रोगोत्पत्ति के संभावित समय का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता है- 1. योग द्वारा और 2. दशा द्वारा। योग में बतलाए गये वर्ष में रोगोंत्पत्ति के काल का निर्धारण दशा फल नियमों की अपेक्षा रखता है। दशा का फल दो प्रकार का होता है। 1. साधारण तथा 2. विशिष्ट । ग्रहस्थान, स्थिति बल एवं योग के कारण जो फल देते हैं वह विशिष्ट फल कहलाता है । साधारण फल वह है जिसकी अनुभूति मात्र होती है। जबकि विशिष्ट फल जीवन में विलक्षण घटनाओं को घटित करता है। रोग जीवन में घटित होने वाली वह विशिष्ट घटना है जो मनुष्य के जीवन में उथल-पुथल मचा सकती है। अत:रोगोत्पत्ति को साधारण फल न मानकर विशिष्ट फल ही मानना चाहिए।

ग्रह दशा के अनुसार रोगोत्पत्ति—

रोगेश, अष्टमेश, मारकेश नीचराशिगत ग्रह, उच्चराशिगत ग्रह, निर्बल ग्रह, पापदृष्ट ग्रह, क्रूर ग्रह, रोग कारक होते हैं। जीवन में जब-जब इन ग्रहों की दशा, अंतर्दशा, प्रत्यंतर दशा, सूक्ष्मदशा आती है, तब तब मनुष्य को रोग तुल्य कष्ट होता है या रोग होता है। किस-किस ग्रह की दशा में कौन-कौन सा रोग हो सकता है यह जानकारी के को हम इस प्रकार से जानने का प्रयास करेंगे।

सूर्य की महादशा में होने वाले रोग—

सामान्यतया सूर्य की दशा में ज्वर, पित्त प्रकोप एवं सिरदर्द होता है। किन्तु वह किसी कारण से रोग कारक हो तो विविध स्थिति में विविध रोगों को उत्पन्न करता है। यदि सूर्य परम नीच राशि गत हो तो विपत्ति एवं मृत्यु तुल्य रोग देता है। अतिशत्रु राशिगत सूर्य की दशा में शारीरिक कष्ट होता है। शत्रु राशिगत सूर्य की महादशा में अग्नि एवं चोर भय होता है। नीचग्रह से युक्त सूर्य की दशा में मनोविकार पापदृष्ट सूर्य की दशा में कृशता, कमजोरी। छठे स्थान में स्थित सूर्य की दशा में गोल्म, अतिसार प्रमेह आदि रोग होते हैं। द्वादशभावस्त सूर्य की दशा में विष भय होता है।

चन्द्रमा की महादशा में होने वाले रोग—

चन्द्रमा की महादशा में प्रायः सर्दी, जुकाम, खांसी, मानसिक अस्थिरता एवं कामजन्य रोग होते हैं। किन्तु जब यह किसी कारण से रोग कारक हो जाते हैं तो विविध रोगों को उत्पन्न करते हैं। जैसे—नीचांशगत चन्द्रमा की महादशा में मानसिक विकार एवं नेत्र रोग होते हैं। अतिशत्रुराशि गत चन्द्रमा की दशा में कलह एवं उद्वेग होता है। नीच राशि गत चन्द्रमा की दशा में अग्निभय एवं मनोव्यथा। अष्टमभावस्थ चन्द्रमा की दशा में जलभय, जलोदर रोग होता हैं।

मंगल की महादशा में होने वाले रोग—

मंगल की दशा में सामान्यतः रक्त विकार, चोट, दुर्घटना, लड़ाई तथा राजा से शारीरिक दण्ड मिलता है। किंतु जब यह किसी कारणवश रोग कारक हो जाता है तो विभिन्न स्थितियों में अपनी दशा के समय विभिन्न रोगों को उत्पन्न करता है। नीचस्थ मंगल की दशा में चोरपीडा, अग्निभय। शत्रु राशि गत मंगल की दशा में प्रमाद, गुदा रोग, नेत्र रोग। नीच ग्रह गत मंगल की दशा में मानसिक विकार, केंद्रस्थ मंगल की दशा में विषजन्य रोग। सप्तमस्थ मंगल की दशा में गुदा रोग, पंचमस्त मंगल की दशा में जड़ता एवं बुद्धि भ्रम, अष्टमस्त मंगल की दशा में विस्फोट, विसर्ग, बक्री मंगल की दशा में सर्पदंश आदि रोग होते हैं।

बुध की महादशा में होने वाले रोग—

बुध की दशा में सामान्यतः ज्वर, चर्मरोग एवं मानसिक अस्थिरता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो इसकी दशा में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे— शत्रु राशि गत बुध की दशा में विपत्ति, समराशिगत बुध की दशा में फोड़ा, फुंसी, नीचराशिगत बुध की दशा में मानसिक रोग, पापदृष्ट बुध की दशा में कृच्छ रोग, तृतीयभावस्थ बुध की दशा में जड़ता, गुल्म रोग, पंचमस्थ बुध की दशा में चिंता, सिरदर्द, द्वादशस्थ बुध की दशा में अंगों के विकलता, मृत्यु आदि रोग होते हैं ।

गुरू की महादशा में होने वाले रोग—

गुरु की दशा में सामान्यतः उदर विकार, स्थूलता बढ़ जाती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोग कारक बन जाता है, तो अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे— नीचग्रहगत गुरु की दिशा में मानसिक रोग, निचांशयुत गुरु की दशा में गुल्म रोग, अस्तंगत गुरु की दशा में अनेक रोग, षष्ठस्थ गुरु की दशा में वात रोग, उदर रोग होते हैं।

शुक्र की महादशा में होने वाले रोग—

शुक्र की दशा में सामान्यता वीर्यरोग, कामरोग एवं स्त्रीजन्य रोगों के होने की संभावना रहती है। किन्तु जब यह रोग कारक हो जाता है तो विभिन्न स्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है। जैसे- परमनीचगत शुक्र की दशा में मानसिक रोग, अतिशत्रुराशिगत शुक्र की दशा में नेत्र रोग, समराशिगत शुक्र की दशा में प्रमेह, गुल्म, गुदा रोग, सप्तमस्त शुक्र की दशा में प्रमेह, षष्ठस्थ शुक्र की दशा में शस्त्र से चोट लगने का भय रहता है।

शनि की महादशा में होने वाले रोग—

शनि की दशा में सामान्यतया वायु विकार, व्यग्रता एवं व्यग्रता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोग कारक हो जाता है तब वह विभिन्न परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोग उत्पन्न करता है। जैसे— अतिशत्रुराशिगत शनि की दशा में चोर एवं राजा से भय, शत्रुराशिगत शनि की दशा में कृशता, समराशिगत शनि की दशा में क्षय, वातरोग, पित्तरोग। लग्नस्थ शनि की दशा में कृशता, सिरदर्द। तृतीयस्थ शनि की दशा में मानसिक रोग, सप्तमस्तराशिगत शनि की दशा में जड़ता, मूत्रकृच्छ रोग होते हैं।

राहु की महादशा में होने वाले रोग—

राहु की दशा के समय में सामान्यतया उदर विकार, मानसिक उद्वेग, छोटी मोटी बीमारी चलती रहती है। इसकी दशा में शत्रुओं के प्रपंच एवं अभिचार जन्य रोग भी होते हैं। जब यह किसी कारणवश रोग कारक हो जाता है तब विविध स्थितियों में निम्न रोगों को उत्पन्न करता है। जैसे- नीचराशिस्थ राहु की दशा में विषभय, लग्नस्थ राशि राहु की दशा में विष, अग्नि एवं शस्त्र से भय, द्वितीयस्थ राहु की दशा में मानसिक विकार, चतुर्थ राहु की दशा में मनोव्यथा, पंचमस्थ राहु की दशा में बुद्धिभ्रम, सप्तमस्त राहु की दशा में सर्पदंश, पापदृष्ट राहु की दशा में अग्निभय होता है।

केतु की महादशा में होने वाले रोग—

केतु की दशा के समय में सामान्यतया भ्रम,भय,एवं मन में चंचलता रहती है। किन्तु जब किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तब विभिन्न परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न ना करता है। जैसे- लग्नगत केतु की दशा में ज्वर, अतिसार, प्रमेह, विस्फोट, हैजा। द्वितीय भाव में केतु की दशा में मानसिक व्यथा, पंचम भावगत केतु की दशा में बुद्धिभ्रम, सप्तमभावगत केतु की महादशा में मूत्रकृच्छ, मानसिक रोग, दशमभावगत केतु की महादशा में मन में जड़ता, अदिविकार, द्वादश भाव में केतु की दशा में नेत्र विकार,पापदृष्ट केतु की दशा में चर्म रोग आदि होते हैं।

2.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको ज्ञात हुआ है कि रोगों के मूल कारण क्या है। अत: इस इकाई के अध्ययन के बाद आप चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त को विविध मतों का अवलोकन करते हुये रोगों के मुख्य कारण साथ ही आयुर्वेद एवं ज्योतिषी दृष्टि में रोग, रोगोत्पेत्ति का समयादि परिज्ञान आदि का अध्ययन इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

बोध प्रश्न-

1. आयुर्वेद के मतानुसार रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है।

क. कर्म को

ख. दोष प्रकोप को

ग. क एवं ख दोनों

घ. भाग्य को

2. प्रश्नमार्ग में उन्माद के कितने भेद बतलाये गये हैं।

क. पांच भेद

ख. चार भेद

ग. तीन भेद

घ. दश भेद

3. ज्योतिषशास्त्र में रागों को कितने प्रकार का माना गया है।

क. दो प्रकार

ख. एक प्रकार

ग. तीन प्रकार

घ. चार प्रकार

4. राशियां कितनी होती हैं।

क. 10

ख. 12

ग. 9

घ. 7

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चरक संहिता, विद्योतिनी टीका, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. प्रश्नमार्ग,शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. बृहत्संहिता, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
4. भरतीय ज्यातिष, डा.नेमिचन्द्र शास्त्री,भरतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
5. ज्योतिष में रोगविचार,डा.शुकदेव चतुर्वेदी,मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. क
3. क
4. ख

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रह दशा के अनुसार रोगोत्पत्ति को विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. रोगों के मुख्य कारण पर विस्तार पूर्वक एक लेख लिखिए।

इकाई-3 विविध व्याधि योग

इकाई का स्वरूप

3.1 प्रस्तावना
3.2 उदेश्य
3.3 रोगनिर्धारण में ग्रहों की भूमिका
3.3.1 राशियों के आधार पर शरीर के अंग
3.4 ग्रहों के आधार पर शरीर के अंग
3.5 लग्नादिद्वादश भावों से विचारणीय रोग
3.6 अभ्यास प्रश्न-1
3.7 ग्रह तथा विविध रोगों के योग
3.8 अभ्यास प्रश्न-2
3.9 रोगों का वर्गीकरण एवं भेद
3.9.1 जीवों द्वारा उत्पन्न
3.9.2 आनुवांशिक रोग
3.9.3 वातावरणीय कारणों से उत्पन्न रोग
3.9.4 आधुनिक जीवन शैली के दुष्प्रभाव से उत्पन्न रोग
3.10 सारांश
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 संदर्भित पाठ्य ग्रन्थ
3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों यह इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धांत (बी.ए.एस.एल.(N)-321 के खण्ड तीन "ज्योतिष शास्त्र एवं व्याधि विवेचन" की तृतीय इकाई है। जिसका शीर्षक "विविध व्याधि योग" है । अब तक आपने आयुर्वेद के विषय में जाना कि आयुर्वेद भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्वति है, जिसका अभ्युदय वेदों से हुआ है। यह ऋषि परम्परा भगवान् धन्वन्तरी से लेकर अग्निवेश, सुश्रुत–चरक– वाग्भट्ट आदि से चली आ रही है। वस्तुत: यह हमारे पूर्वजों की विरासत एवं हम पर उपकार है कि इस शास्त्र का ज्ञान इस पृथ्वी लोक तक जीव मात्र के कल्याण के लिए दिया ।

3.2 उद्देश्य

- ❖ इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप ज्योतिष शास्त्र के सिद्धांतों से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ आप जान पायेंगे कि ज्योतिषशास्त्र का महत्व चिकित्सा के क्षेत्र में कितना है ।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र रोगों का आंकलन किस प्रकार करता है, इस सिद्धांत से भली-भान्ति जान पाएंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र में किस प्रकार व्याधियों का विचार किया जाता है। इस सिद्धांत का बोध कर सकेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधियों के योग कैसे–कैसे बनते हैं, इन सब विषयों का गहनता से अध्ययन कर सकेंगे ।

3.3 रोगनिर्धारण में ग्रहों की भूमिका

"ग्रहाधीनं जगत्सर्वम्" इस उक्ति के अनुसार मानव को अपने जीवन में जो भी सुख-दुःख की अनुभूति होती है, उन सभी का मुख्य कारण ग्रह ही हैं। जातक की जन्म कुण्डली में जो ग्रह शुभफल के कारक होते हैं, उनकी दशा- अन्तर्दशा में शुभफल प्राप्त होता है और जो ग्रह अशुभफल के कारक होते हैं, उनकी दशा-अन्तर्दशा, गोचर आदि में अशुभफल प्राप्त होता है। ग्रहों की शुभता और अशुभता का ज्ञान उनकी स्थिति, युति और दृष्टि के कारण होता है। इन्हीं के कारण ही हमें सुख- दुःख का अनुभव होता है। चिकित्साशास्त्र के लिये जिस प्रकार शारीरिक विज्ञान ही आधार है, उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में जन्मकुण्डली के बारह भावों में शरीर के विभिन्न अंगो की परिकल्पना की गई है। इन अंगो के ऊपर किन ग्रहों का और राशियों का आधिपत्य है, इन सब का ज्ञान करते हुए जो ग्रह जिस राशि में स्थित हैं, उनकी स्थिति के अनुसार उनके द्वारा होने वाले रोगों का विचार किया जाता है। ये राशियाँ कौन सी हैं ? ये ग्रह कौन से हैं ? वे भाव कौन से हैं? इन प्रश्नों के उत्तरों का अब हम विचार करेंगे।

3.3.1 राशियों के आधार पर शरीर के अंग

ज्योतिषशास्त्र में द्वादश राशियों का वर्णन प्राप्त होता है। ये द्वादश राशियाँ हैं- मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। हमारे शरीर के विभिन्न अंगों पर राशियों का स्वामित्व है। यह राशियाँ यदि शुभ ग्रहों से युक्त हो तो ये राशियां जिन अंगो का प्रतिनिधित्व करती हैं,उन शरीर के उन अङ्गों में सुदृढता और सुन्दरता रहती हैं।

अशुभ ग्रहों से युक्त होने पर शरीर के उन अङ्गों में पीडा रहती हैं। बृहज्जातक में जिस प्रकार आचार्य वराहमिहिर ने कहा भी है-

कालाङ्गानि वराङ्गमाननपुरो हृत्कोडवासोभृतो।
वस्तिर्व्यञ्जनमूरुजानुयुगले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम्।।(बृहज्जातकम्)

मेष राशि सिर का प्रतिनिधित्व करती है। वृष राशि मुख का,मिथुन राशि वक्षस्थल का, कर्क राशि हृदय का, सिंह राशि उदर का, कन्या राशि कमर का, तुला राशि वस्तिप्रदेश का, वृश्चिक राशि गुप्ताङ्ग का,धनु राशि उरुस्थल का, मकर राशि जङ्घा का,कुम्भ राशि घुटनों का तथा मीन राशि पैरों का प्रतिनिधित्व करती हैं ।मेषादि द्वादश राशियां मानव-शरीर के जिन अङ्गों का प्रतिनिधित्व करती है, उसको तालिका के माध्यम से भी समझा जा सकता है -

राशि	शरीराङ्ग
मेष	शिर
वृष	मुख
मिथुन	स्तनमध्य
कर्क	हृदय
सिंह	उदर
कन्या	कमर
तुला	वस्ति
वृश्चिक	गुप्ताङ्ग
धनु	उरुस्थल
मकर	जङ्घा
कुम्भ	घुटना
मीन	पादयुगल

3.4 ग्रहों के आधार पर शरीर के अंग

ज्योतिषशास्त्र में कुल नव ग्रह माने जाते हैं, जिनके नाम इस प्रकार है- सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु। इनमें सूर्यादि सप्त ग्रह तथा राहु-केत्वादि दो छाया ग्रह माने जाते हैं। इन नौ ग्रहों की जन्माङ्ग में शुभाशुभ स्थिति के आधार पर ही व्यक्ति को जीवन में शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ।इनमें से सूर्यादि सप्तग्रहों को राशियों का स्वामित्व प्राप्त है, यद्यपि राहु-केत्वादि को राशियों का स्वामित्व प्राप्त नहीं है,प्रत्येक ग्रह का सम्बन्ध किसी न किसी तत्त्व तथा किसी न किसी शरीराङ्ग से है, जिसका वर्णन ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों ने विविध ग्रन्थों में किया है।

सूर्य का सम्बन्ध जातक की अस्थियों से होता है। चन्द्र ग्रह मनुष्य के रक्त को प्रभावित करता है। मंगल ग्रह का सम्बन्ध मज्जा से है। बुध ग्रह त्वचा को प्रभावित करता है। बृहस्पति का सम्बन्ध मेदा से है । शुक्र ग्रह वीर्य से सम्बन्धित है तथा शनि का सम्बन्ध नसों से है। यथोक्तम्-

स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथ शुक्रवसा च मज्जा।
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः ।। (बृहज्जातकम्-2/11)

ग्रहों तथा विविध शरीराङ्गों के इस सम्बन्ध तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है । तद्यथा-

ग्रह	शरीराङ्ग
सूर्य	अस्थि
चन्द्र	रक्त
मंगल	मज्जा
बुध	त्वच्चा
गुरु	मेदा
शुक्र	वीर्य
शनि	स्नायु

ज्योतिषशास्त्र में प्रायः सभी रोगों के लिए जन्मकुण्डली के छठे भाव का ही प्राधान्य होता है परन्तु कभी – कभी ऐसा होता है कि छठे भाव के अधिपति ग्रह और छठे भाव का दोष न होने पर भी लोग रोगों से पीडित होते हैं। अतः रोग विचार के लिए छठे स्थान को अधिक महत्व दिया जाता है, फिर भी सभी रोगों के विचार के लिए रोग भाव छठा ही हो ऐसा नहीं कह सकते इसलिए हमें सभी रोगों के विचार के लिए जन्मकुण्डली के सभी भावों से विचार कर लेना चहिए। जैसे कहा भी है-

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैवा व्ययमृत्युसंस्थै:।
रोगश्चरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्र्यादिसंवादवशाद्वदन्तु।।(फलदीपिका)

अर्थात् जो रोग दीर्घ अवधि से चले आ रहे हैं, उनका विचार चतुर्थ और द्वादश स्थानों के माध्यम से, शीघ्रता से होने वाले रोगों का विचार छठे भाव से, आकस्मिक घातक मारक रोगों का विचार अष्टम भाव से किया जाता है। पुनः हम जन्म लग्न से भी रोगी के विषय में ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् जातक के वात-पित्त-कफ आदि में कौन सी प्रकृति है ? सात्विक-राजसिक-तामसिक गुणों में जातक का कौन सा गुण है? काम-क्रोध आदि स्वभावों में जातक का कौन सा स्वभाव है? जातक की जीवनशैली कैसी है?उसका खानपान कैसा है?रोगी की प्रतिरोधक क्षमता कैसी है ? इत्यादि विषय जातक के जन्मकुण्डली से विचार किए जाते हैं, जिनसे जातक की रोग प्रतिरोधक क्षमता का ज्ञान होता है।

3.5 लग्न आदिद्वादश भावों से विचारणीय रोग

जन्मकुण्डली में लग्नादि द्वादश भाव होते हैं। इन्हीं द्वादश भावों के आधार पर शरीर के विभिन्न अंगों का विचार किया जाता है। समस्त जन्मकुण्डली को कालपुरुष का स्वरुप मानकर प्रथम भाव से सिर का, द्वितीय भाव से मुख का, तृतीय भाव से वक्षस्थल का, चतुर्थ भाव से हृदय का, पञ्चम भाव से उदर का, षष्ठ भाव से कटि का, सप्तम भाव से वस्ति का, अष्टम भाव से गुप्त इन्द्रियों का, नवम भाव से जांघों का, दशम भाव से दोनों घुटनों का, एकादश भाव से पिंडलियों का तथा द्वादश भाव से दोनों पैरों का विचार किया जाता है । जिस भाव में शुभ ग्रह हों, जिस भाव को शुभ ग्रह देखते हों, जिस भाव का स्वामी बलवान् हो उस भाव से सम्बन्धित शरीर का भाग पुष्ट और सुन्दर होता है। यदि किसी भाव का स्वामी निर्बल हो या अशुभ

दृष्ट, अशुभ युत हो तो उस भाव से सम्बन्धित शरीर का भाग कृश या रोगयुक्त होता है। प्रत्येक भाव से किसी रोग विशेष का विचार किया जाता है, जिसको अधोलिखित तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है। तद्यथा-

भाव	विचारणीय रोग
प्रथम भाव	सिर-त्वक्-उन्माद-अपस्मार-दुर्मरण-मुख-रक्तचापादि रोग
द्वितीय भाव	मुख-नेत्र-दन्त-कर्ण-श्वासादि रोग।
तृतीय भाव	कर्ण-बाहु-निमोनिया आदि रोग।
चतुर्थ भाव	जल से मृत्यु, वाहनादि से अघात, हृदयविकार- स्तनविकार आत्मघातादि रोगों का विचार।
पंचम भाव	मन्त्र-तन्त्र-कृत्रिम अभिचार प्रयोग जनित रोग, गर्भकोषविकार, उदरविकार-जलोदर-यकृतविचार-मधुमेय-पाण्डुरोग-अमाशयगतव्रण- गर्भपातादि रोगों का विचार
षष्ठ भाव	अतिसार-अग्निमाद-राजयक्ष्मा-सन्निपात-व्रणादि रोग।
सप्तम भाव	गुप्ताङ्गगरोग-मूत्ररोग-प्रमेह-स्त्रीरोगादि।
अष्टम भाव	दुर्मरण-तीव्रमरण सूचक रोग, गुदाविकार – अपदंश – विषूचिका – आर्तवदोष - मलव्याधि – वृषणवृद्धि - विविध स्त्रीरोग
नवम भाव	संधिवात-आमवात-वातरक्तादि रोग
दशम भाव	संधिवात-वातरक्तादि रोग
एकादश भाव	मत्स्यगण्डादिरोग
द्वादश भाव	पुरातनरोग-पक्षघातादि रोग

3.5 अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. वेदों की संख्या छः है।
2. आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है।
3. होम्योपैथी चिकित्सा की एक पद्धति है।
4. सात्विकादि गुणों की संख्या तीन हैं।
5. मेष राशि हृदय का प्रतिनिधित्व करती है।
6. सिंह राशि का स्थान उदर है।
7. मीन राशि का स्थान गुदा भाग है।
8. मेषादि राशियों की संख्या द्धादश हैं।

3.7 ग्रह तथा विविध रोगों के योग

"व्याधिना को न पीडितः" इस उक्ति के अनुसार इस संसार में ऐसा कौन है, जो अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में रोग से पीडित न हो। रोग के समान इस संसार में कोई भी शत्रु नहीं है, इसलिए कहा जाता है कि"न च व्याधिसमो रिपु" और रोग से पीडित व्यक्ति का परममित्र औषधि ही है। हमारे ऋषि-मुनियों ने आध्यात्मिक साधना के लिए प्रथम सीढी शरीर को ही स्वीकार किया है।"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" इस उक्ति को पहला स्थान प्राप्त है। धार्मिक

क्रियायों के सम्पादन के लिए स्वस्थ मन की आवश्यकता होती है। शरीर यदि रोग मुक्त होगा तभी मनुष्य के मन में शुद्ध विचारों की उत्पति होगी । स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है। शरीर तभी स्वस्थ होगा जब कोई रोग नहीं होगा। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार व्यक्ति के जीवन में भविष्य में घटित होने वाली समस्त शुभाशुभ घटनाओं के विषय में जाना जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति रोग से ग्रसित हो तो निश्चित ही उसकी जन्मकुण्डली में जो ग्रह षष्ठ भाव-अष्टम भाव तथा द्वादश भाव में हो, वे ग्रह रोग के कारण बनते है । इसी प्रकार से षष्ठ भाव-अष्टम भाव तथा द्वादश भाव के स्वामियोंके साथ जो ग्रह सम्बन्ध करते हो, वे भी विविध रोगों के कारक होते हैं । ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में शरीर में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के रोगों के विविध योगों का वर्णन प्राप्त होता है । उनमें से रोगों के कुछ योग निम्नलिखित हैं-

- यदि चन्द्र और सूर्य द्वितीय या द्वादशभाव में हों और उनको मंगल और शनि देखते हों तो नेत्र रोग होता है।
- यदि तृतीय और एकादशभाव में स्थित बृहस्पति को मंगल या शनि दृष्टि या युतिसम्बन्ध हो तो कान का रोग होता है।
- सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु इनमें से कोई भी ग्रह पंचम में हो तो उदर रोग होता है।
- शुक्र यदि सप्तम या अष्टम भाव में हो तो वीर्य सम्बन्धी प्रमेहादि या मूत्ररोग करता है।
- यदि षष्ठेश या अष्टमेश सप्तम में हो या षष्ठेश अष्टम में हो तो गुदा रोग होता है।
- यदि षष्ठ या अष्टम भाव में सूर्य हो तो ज्वर होता है।
- यदि षष्ठ या अष्टम भाव में मंगल या केतु हों तो व्रण होता है।
- यदि षष्ठ या अष्टम भाव में शुक्र हो तो जन्नेद्रिय प्रदेश में रोग होता है।
- यदि चन्द्र लग्न से षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथापाप ग्रहों से देखा जाता हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो मृत्यु तुल्य कष्ट होता है।
- यदि क्षीण चन्द्र पाप ग्रहों के साथ हो और जल राशि में षष्ठ या अष्टम भाव में हो तो क्षय रोग होता है ।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार व्यक्ति के शरीर पर सूर्यादि नवग्रहों का शुभाशुभ प्रभाव पडता है। प्रत्येक ग्रह शरीर के किसी न किसी अंग का प्रतिनिधित्व करता है और प्रत्येक ग्रह किसी न किसी रोग का कारक भी होता है। अतः मानव के शरीर विविध ग्रहों के पाप प्रभाव के कारण विविध प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है । अब सूर्यादि ग्रहों के अशुभ प्रभाव के कारण होने वाले विविध रोगों के विषय में चर्चा की जाएगी-

सूर्य- यह अग्नि तत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद का ग्रह है । यह पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के वाम अङ्गों का प्रतिनिधित्व करता है । यह त्रिदोषों मेंपित्त का कारक है अतः पित्त से सम्बन्धित रोगों का विचार सूर्य से किया जाता है। मनुष्य के शरीर में यह नेत्र,आयु , अस्थि, शिर , हृदय , प्राणशक्ति , मेदा तथा रक्त से सम्बन्धित है । सूर्य प्रकाश का कारक है इसकी बलहीनता के कारण नेत्र से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं । इसके बली होने पर अस्थियां मजबूत होती है तथा शरीर सुदृढ होता है । सूर्य यदि जन्मकालिक ग्रहस्थिति में रोगकारक हो तो मनुष्य को ज्वर, अस्थिरोग, क्षयरोग, पित्तरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, हृदयरोग, उष्णवात, मूर्च्छा,

रक्तस्राव, अपस्मार, रक्तविकार, चर्मरोग और अग्नि-अस्त्र के द्वारा घातादि के कारण कष्ट प्राप्त होता है। यथोक्तम्-

पित्तोष्णज्वरतापदेहतपनापस्मारहृत्क्रोडज-
व्याधीन्वक्ति रविर्दृगार्त्यरिभयं त्वग्दोषमस्थिस्रुतिम्।
काष्ठाग्न्यस्त्रविषार्तिदारतनययव्यापचतुष्पाद्भयं
चोरक्ष्मापतिधर्मदेवफणभृद्भूतेशभूतं भयम्।। (फलदीपिका)

चन्द्र- यह जलतत्त्व की प्रधानता वाला तथा दीर्घ कद वाला ग्रह है। यह पुरुषों के वाम तथा स्त्रियों के दायें अङ्गों तथा मानव शरीर में नेत्र , स्तन, वक्ष , फेफडा, मन , मस्तिष्क , उदर , मूत्राशय , रक्त , रस-धातु, शारीरिक पुष्टि तथा कफ का प्रतिनिधित्व करता है। चन्द्रमा शीतल है। त्रिदोषों में यह कफ का कारक है, अतः कफजनित रोगों का विचार इसी ग्रह से किया जाता है। चन्द्र मन का कारक है अतः इसकी बलहीनता के कारण मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। चन्द्र के अशुभ होने पर बालारिष्ट का भय होता है। इसकी बलहीनता के कारण निमोनिया, एलर्जी, दमा, मुत्रविकार, जलोदर, मुखरोग, नासिकारोग, पाण्डुरोग , क्षयरोग, मन्दाग्नि, अतिसार, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, प्रदर, अपस्मार, वात, श्लेष्मा, श्वास रोग , पिटक, गर्भिणी स्त्रीयों के रोग, शीतज्वर, (मलेरिया, टायफइड) प्रमेह, मधुमेह, रक्त विकार, गर्भकोश विकार, उन्माद, मूर्च्छा, अशक्तता, राजयक्ष्मादि रोगों के कारण मनुष्य को कष्ट की प्राप्ति होती है। यथोक्तम्-

निद्रालस्यकफातिसारपिटकाः शीतज्वरं चन्द्रमाः,
श्रृङ्गयब्जाहतिमग्निमान्द्यमरुचिं योषिद्व्यथाकामिला।
चेत्शान्तिमसृग्विकारमुद्कादभीतिंच बालग्रहाद्,
दुर्गां किन्नरधर्मदेवफणभृद्यक्ष्माच्च भीतिं वदेत्।।(फलदीपिका)

मंगल- यह अग्नितत्त्व की प्रधानता वाला तथा छोटे कद वाला शुष्क ग्रह है। यह त्रिदोषों में सूर्य की तरह पित्त प्रकृति का ग्रह है, अतःइस ग्रह से पित्तात्मक रोगों का विचार किया जाता है। यह मज्जा का कारक भी है। इसकी अशुभता के कारण रक्त सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। यह शरीर में कपाल (खोपडी), कान, स्नायु, जननेन्द्रिय, शारीरिक शक्ति, धैर्य, संघर्षशीलता,उत्तेजना का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर शरीर मजबूत होता है ,शरीर में प्रतिरोधक शक्ति में वृद्धि होती है तथा व्यक्ति धैर्य एवं साहस से युक्त होता है। इसकी बलहीनता के कारण ज्वर, आकस्मिक अपघात, रक्तस्राव, रक्तचाप, सूजन, चोट, महामारी , अग्नि-विष-शास्त्रापघात, कुष्ठरोग, व्रण, गुल्मरोग (अलसर), स्नायुविकार, अपस्मार, नेत्र विकार, अङ्ग विकृति, उर्ध्वाङ्ग रोग (मुख-नेत्र-कर्ण-कण्ठादि रोग), आन्तरिक व्रण, दुर्घटनाजन्य रोग, गुप्त रोग आदि रोग तथा वे रोग- जिनमें शल्य-क्रिया होती है- ऐसे रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

तृष्णासृक्कोपपित्तज्वरमनलविषास्त्रार्तिकुष्ठाक्षिरोगान्,
गुल्मापस्मारमज्जाविहतिपरुषतापामिकादेहभङ्गान्।
भूपारिस्तेनपीडां सहजसुतसुहृद्वैरियुद्धं विधत्ते,
रक्षोगन्धर्वघोरग्रहभयमवनीसूनुरूर्ध्वाङ्गरोगम्।।(फलदीपिका)

बुध- यह पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता वाला तथा सामान्य कद वाला जलीय ग्रह है। यह वाणी का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारण वाणी से सम्बन्धित विकार उत्पन्न होते हैं। इसमें वात-

पित्त-कफादि त्रिदोषों की प्रधानता होती है। इसे त्वच्चा का कारक भी माना गया है इसकी अशुभता के कारण त्वच्चा के रोग भी होते हैं। यह जिह्वा, वाणी, स्वरचक्र, श्वासनली, मस्तिष्क, मज्जातन्तु, केश, हाथ का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान होने पर मस्तिष्क सन्तुलित एवं विकसित, व्यक्तित्व आकर्षक एवं सम्प्रेषण-कला प्रभावोत्पादक होती है।इसकी बलहीनता के कारण मूर्च्छा,हिस्टीरिया, मनोविकार, भ्रान्ति, तर्कशक्ति का अभाव, चक्कर आना, तनाव, निराशा, न्यूमोनिया, विषमज्वर, टाइफाइड, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, मन्दाग्नि, हकलाहट, उदर विकार, कुष्ठ रोग, नासा रोग एवं स्नायु रोगों के कारण व्यक्ति को कष्ट तथा पीडा का अनुभव करना पडता है। यथोक्तम्-

भ्रान्तिं दुर्वचनं दृगामयगलघ्राणोत्थरोगं ज्वरं,
पित्तश्लेष्मसमीरजं विषमपि त्वग्दोषपाण्ड्वामयान्।
दुःस्वप्नं च विचर्चिकाग्निपतिते पारुष्यबन्धश्रमान्,
गन्धर्वक्षितिहर्म्यवाहिभिरपि ज्ञो वक्ति पीडां ग्रहैः।। (फलदीपिका)

गुरु- यह आकाश तत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। गुरु बुद्धि का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारण बुद्धिहीनता के विकार उत्पन्न होते हैं। त्रिदोषों में बृहस्पति की कफ प्रकृति होने के कारण यह कफजनित रोग उत्पन्न करता है। शरीर में यह ग्रह चर्बी, वीर्य, उदर, यकृत, रक्तधमनी, त्रिदोष, एवं कफ का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट होता है, विचार शक्ति तीव्र होती है। मानसिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है तथा व्यक्ति सम्पूर्ण मनोयोग से अपने दायित्वों का निर्वाह करता है। इसकी बलहीनता के कारण मूत्रविकार, वीर्य विकार, मधुमेह, प्रमेह, प्रदर, गुप्त रोग, मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाले रोग, विषजन्य रोग, उपदंश, कफ विकार, पाण्डु रोग, गुल्मरोग, अपचन, यकृत विकार, उदर विकार, दन्तरोग, वायु विकार, कर्णरोग, रक्तचापादि रोगों का भी विचार किया जाता है। यथोक्तम्-

गुल्मान्त्रज्वरशोकमोहकफजान् श्रोत्रार्तिमोहामयान्,
देवस्थाननिधिप्रपीडनमहीदेवेशशापोद्भवम्।
रोगं किन्नरयक्षदेवफणभृद्विद्याधराद्युद्भवम्,
जीवः सूचयति स्वयं वुधगुरूत्कृष्टापचारोद्भवम्।। (फलदीपिका)

शुक्र- यह जलतत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद का ग्रह है। शुक्र वीर्य का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारणवीर्यविकार उत्पन्न होते हैं। त्रिदोषों में इसकी वातप्रकृति होने के कारण यह वातरोगों का कारक हैं। शरीर में यह ग्रह जननेन्द्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।इसके बली होने पर शरीर सुडौल, व्यक्तित्व आकर्षक, मन-मस्तिष्क में चुस्ती एवं वीर्य पुष्ट होता है। शुक्र की बलहीनता के कारण वीर्य विकार, मूत्र विकार, स्त्रीरोग, प्रदर, गुप्तरोग, स्त्रीसंसर्ग जन्य रोग, शीघ्रपतन, कफ-वायु विकार, गर्भकोश विकार, जननांग विकार, मधुमेह, प्रमेह, नेत्रविकार, पाण्डुरोग, चर्मरोग तथा विषजनितादि रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

पाण्डुश्लेष्ममरुत्प्रकोपनयनव्यापत्प्रमेहामयान्,
गुह्यस्यामयमूत्रकृच्छ्रमदनव्यापत्तिशुक्लस्रुतिम्।
वारस्त्रीकृतदेहकान्तिविहितंशोषामयं योगिनी-
यक्षीमातृगणाद्भयं प्रियसुहृद्भङ्गं सितः सूचयेत्।। (फलदीपिका)

शनि- यह वायुतत्त्व की प्रधानता वाला तथा लम्बे कद का शुष्क ग्रह है। शनि स्नायु का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारण स्नायु सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। त्रिदोषों में यह वात प्रधान होने के कारण वातजनितरोगों का कारक हैं। मानव शरीर में अङ्ग सन्धियां, पैर, घुटने,वात संस्थान,स्नायुमण्डल, मज्जा तथा क्रियाशक्ति का प्रतिनिधित्व करता है । इसके बलवान होने पर स्नायुमण्डल पुष्ट तथा कद अच्छा होता है । इसकी बलहीनता के कारण वायुविकार, स्नायुविकार, गठिया, सन्धिवात, जोडों में दर्द, पक्षाघात, कुक्षिरोग, वातरक्त, खांसी, दमा, अङ्गभङ्ग, असन्तोष, उन्माद, अपचन, श्वास-कर्ण-दन्त-अस्थिविकार, एवं निराशाजन्य मानसिक रोगों तथा दीर्घकाल तक रहने वाले रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

वातश्लेष्मविकारपादविहितं चापत्तितन्द्राश्रमान्,
भ्रातिं कुक्षिरुगन्तरुष्णभृतकध्वंसं च पार्श्वाहतिम्।
भार्यापुत्रविपत्तिमङ्गविहतिं हृत्तापमर्कात्मजो,
वृक्षाश्मक्षतिमाह कश्मलगरगैः पीडां पिशाचादिभिः।।(फलदीपिका)

राहु- यह वायु तत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद का ग्रह है। राहु के कारण आकस्मिक रोगों की उत्पत्ति होती है। त्रिदोषों में यह वात प्रधान होने के कारण वातजनित रोगों का कारक है। यह शरीर के मस्तिष्क,रक्त, त्वचा एवं वात का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने के कारण शरीर में फुर्ती, ताजगी एवं चैतन्यता बनी रहती है। राहु की अशुभता के कारण मनोविकार, चेचक, कृमि, मिरगी, सर्पदंश, पशुओं से चोट, कुष्ठरोग, गैस, कैंसर, मूर्च्छा, अपस्मार, क्षुधा, चेचक, कर्करोग, सांप-विच्छु-विडाल-शुनक-सिंह-व्याघ्र आदि प्राणियों से दंश का भय, भूत-प्रेत आदि से होने वाले रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है।

केतु- यह वायुतत्त्व की प्रधानता वाला तथा छोटे कद का ग्रह है ।केतु भीराहु की तरह आकस्मिक रोगों को उत्पन्न करता है। त्रिदोषों में यह भी वात प्रधान है अतः वात जनित रोगों की उत्पत्ति करता है।शरीर में यह वात,रक्त तथा चर्म का विशेष रूप से प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान होने पर शरीर में श्रम-शक्ति,संघर्षशक्ति,प्रतिरोधशक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। केतु की अशुभता के कारण चर्मरोग, वातरोग, आलस्य, स्नायु विकार, व्रण, अपघात, उदर विकार, कमजोरी, चोट, घाव, चेचक, एलर्जी आदि रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

स्वर्भानुर्हृदि तापकुष्ठविमतिव्यार्धि विषं कृत्रिमं,
पादार्तिं च पिशाचपन्नगभयं भार्यातनूजापदम्।
ब्रह्मक्षत्रविरोधशत्रुजभयं केतुस्तु संसूचयेत्,
प्रेतोत्थं च भयं विषं च गुलिको देहार्तिमाशौचजम्।।(फलदीपिका)

3.8 अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1.वेदांगों की संख्या.....है।

2.ज्योतिष एक.....है।

3.वात, पित्त और कफ तीन.....है।

4. नाभि प्रदेश.....राशि का स्थान है।

3.9 रोगों का वर्गीकरण एवं भेद

3.9.1 जीवों द्वारा उत्पन्न रोग

मानव के अनेक रोग विविध प्रकार के विषणाओं, जीवाणुओं, कवकों तथा परजीवीप्रोटोजोआ एवं कृमियों के संक्रमण के कारण होते है। इन रोगों को इसलिए संक्रमण रोग कहते हैं। इनमें या तो रोगोत्पादक जीव हमारे शरीर में प्रचुरोद्भवन द्वारा संख्या में बढ़कर ऊतकों की क्षति करते हैं, या ये शरीर को हानि पहुँचाने वाले विषैले पदार्थ मुक्त करते है। शरीर का सुरक्षा तन्त्र रोगोत्पादक जीवों और विषैले पदार्थों को नष्ट करने का प्रयास करता है, जिससे ज्वर, तथा संक्रमित ऊतकों में पीड़ा, सूजन, जलन आदि होने लगते हैं। इसे प्रवाह कहते हैं।

3.9.2 आनुवांशिक रोग

मनुष्य के अनेक रोग जीवों तथा गुणसूत्रें की गड़बड़ियों के कारण अर्थात् आनुवांशिक होते है। माता पिता के विकारों से उत्पन्न होता है जिसे अंग्रेजी मे हेरिडिटरी या आनुवांशिक रोग कहते हैं।

3.9.3 वातावरणीय कारणों से उत्पन्न रोग

वातावरण की कई भौतिक एवं रासायनिक दशाएँ मनुष्य में रोगोत्पादन का काम करती है। उदाहरणार्थ, सूर्य-प्रकाश की पराबैगनी किरणों, विविध प्रकार के आयनकारी विकिरणों आदि से चर्मरोग हो सकते हैं। इस प्रकार वायु, जल, मिट्टी आदि के रासायनिक प्रदूषण अत्याधिक गर्मी में पसीने के जरिए नमक की क्षति, सर्प तथा अन्य विषैले जन्तुओं के विष आदि के प्रभाव से घातक रोग हो जाते हैं।

3.9.4 आधुनिक जीवन शैली के दुष्प्रभाव से उत्पन्न रोग

स्वस्थ एवं निरोग रहने के लिए आवश्यक है कि पोषक तत्वों के रूप में हम वातावरण से जितनी ऊर्जा ग्रहण करें उतनी ऊर्जा का शारीरिक क्रियाओं में व्यय करें, अर्थात् ऊर्जा की आमद ऊर्जा की खपत के बराबर होनी चाहिए। वर्तमान भौतिकवादी जीवन शैली में एक ओरतो हमारी भोजन सामग्री में विभिन प्रकार के स्वादिष्ट परन्तु उच्च ऊर्जायुक्त व्यंजनों का समादेश हो गया है और दूसरी ओर जीवन यापन की विभिन्न प्रकार की सुविधाओं के कारण शारीरिक श्रम की आवश्यकता बहुत कम रह गई है। इस प्रकार ऊर्जा-ग्रहण, ऊर्जा-खपत से बढ़ता जा रहा है। ऊर्जा का यह असन्तुलनश् मानव के कई आधुनिक रोगों-मधुमेह, मानसिक तनाव, हृदयघात, मस्तिक घात, कैसर आदि के लिए जिम्मेवार है। ज्योतिषशास्त्र में रोगों साङ्गोपाङ्ग विवेचन करने से पूर्व उनके वर्गीकरण का विचार किया गया है। प्रश्नमार्ग नामक होरा ग्रन्थ के बारहवे अध्याय में शास्त्रन्तरों (आयुर्वेदीय ग्रन्थों यथा-चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, भेल संहिता, काश्यप संहिता, अष्टांगसंग्रह, अष्टांगहृदय, माधवनिदान आदि) में जो रोग बताये गए हैं उन रोगों का रोगों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है -

सन्ति प्रकारभेदाश्च रोगभेदनिरूपणे।
ते चाप्यत्र विलिख्यन्ते यथा शास्त्रन्तरोदिता।।
रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुविभेदतः।
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधाः पुनः।
निजा शरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमित्तजाः ।

तथैवागन्तुकाश्चौवं व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः ।।

अर्थात् निज तथा आगन्तुज भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं, फिर इन दोनों में से प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं-

1- निज रोग (सहज रोग) - निज रोगों के दो भेद है - (क) शारीरिक (ख) मानसिक

(क) शारीरिक रोग- शारीरिक रोग पुनः पांच प्रकार के होते हैं -

1- वातज, (वातदोष से),

2- पित्तज (पित्तदोष से), कफज

3- (कफदोष से),

4- द्विदोषज - वतापित्तज (वात तथा पित्त के मिश्रण से), वातकफज (वात-कफ के मिश्रण से) तथा पित्तकफज (पित्त तथा कफ के मिश्रण से)।

5- त्रिदोषज (तीनों दोषो के मिश्रण से)

2- आगन्तुज रोग आगन्तुज रोग भी दो प्रकार के है -

(क) दृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्ष पता रहता है)

(ख) अदृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्षतः पता नहीं लगता, यथा भूत-प्रेतादि)

(क) दृष्ट निमित्तजन्य - दृष्ट निमित्तजन्य रोगों के दो भेद हैं - औपसर्गिक अभिघातज।

(ख) अदृष्टनिमित्तजन्य रोग - अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी दो प्रकार हैं - प्रेतदोष एवं प्रारब्ध।

इस प्रकार प्रश्नमार्ग में रोगों का वर्गिकरण आयुर्वेदीय ग्रन्थों के आधार पर किया गया गया है। रोगों के उक्त वर्गीकरण को निम्न चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है -

निज (सहज) रोग - निज रोग सहज रोग, जन्मजात रोग अथवा आनुवांशिक राग भी कहलाते है। चिकित्सकों के अनुसार आनुवंशिकी और रोग में बहुधा कोई न कोई संबंध रहता है। अनेक रोग दूषित वातावरण तथा परिस्थतियों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अधिकांश रोग रोग ऐसे होते हैं जिनका कारण माता-पिता से जन्मना प्राप्त कोई दोष होता है। एसे रोग आनुवंशिक रोग (जेनेटिक डिसऑर्डर) कहलाते हैं। जीवों में नर के शुक्राणु तथा स्त्री की अंडकोशिका के संयोग से संतान की उत्पत्ति होती है। शुक्राणु तथा अंडकोशिका दोनों में केंद्रकसूत्र रहते हैं। इन केंद्रकसूत्रें में स्थित जीन के स्वभावानुसार संतान के मानसिक तथा शारीरिक गुण और दोष निश्चित होते हैं। जीन में से एक या कुछ के दोषोत्पादक होने के कारण संतान में वे ही दोष उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरणार्थ बहुत से जन्मजात रोग अधिक आयु हो जाने पर ही प्रकट होते हैं। तथा कुछ आनुवंशिक रोग बच्चे में जन्म से ही होते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जन्मजात रोगों का कारण जातक के स्वयं के पूर्वार्जित कर्म तथा माता पिता के द्वारा किया गया कर्म होता है। ये रोग दो प्रकार के होते है - शारीरिक तथा मानसिक ।

शारीरिक रोग- शरीर के आन्तरिक भाग में अथवा त्वचा में होने वाले रोग शारीरिक रोग कहलाते है। प्रश्नमार्ग के अनुसार शरीरिक रोगों का विचार निन्म प्रकार से किया जाता है -

वातपित्त कफोद्भूताः पृथक्संसर्गजास्तथा।

सन्निपाताश्चैते शरीरा कीर्तिता गदा।

शारीरिकरोगाः अष्टमेन तदीशेन तद्रष्ट्रा तद्गतेन वा।

विज्ञातव्याः स्युरेतेषां वीर्यतस्तत्कृता गदाः ।।

अर्थात् वातदोष से, पित्तदोष से , कफदोष से, वात-कफ के मिश्रण से, पित्त-कफ के मिश्रण से, पित्त-कफ के मिश्रण से तथा तीनों दोषों के मिश्रण (सन्निपात) से जो रोग रोग उत्पन्न

होते हैं उन्हें शारीरिक रोग कहा जाता है (क्योकि ये शरीर में उत्पन्न दोषविकृति से पैदा होते हैं) शारीरिक रोगों का विचार अष्टमेश, अष्टम भाव, अष्टमद्रष्टा ग्रह तथा अष्टमस्थ ग्रह से होता है । इनमें जो बली ग्रह होता है वह अपना रोग उत्पन्न करता है। शारीरिक रोग निम्नलिखित है -

1- लूलापन - बाजु या हाथ का ना होना अथवा कट जाना लूलापन कहलाता है।

2- लंगडानपन (पङ्गुत्व) - पैर का ना होना अथवा कट जाना पंगुत्व कहलाता है।

3- कुबडापन - पीठ में कुब होना अर्थात् पीठ में असामान्य रूप से बडा गोलाकार उभार कुब कहलाता है।

4- हीनाङ्गयोग - शरीर के किसि अङ्गका ना होना अङ्गहीनता कहलाता है।

5- जन्मान्धता - किसि जातक का जन्म से ही अन्धा होना।

6- काणत्व योग - जन्म से किसि एक आंख का ना होना।

7- गूंगापन - जन्म से बोल ना पाना गूंगापन कहताला है।

8- बहिरापन - यह एक कर्णरोग है, जिसमें जातक बचपन से ही सुन नहीं सकता अथवा जन्म के पश्चात श्रवण शक्ति खो देता है।

9- नपुंसकता - सन्तानोत्पाद की शक्ति का ना होना। इस शक्ति से हीन पुरूष नपुंसक तथा महिला बन्ध्या कहलाती है।

10- जडता - बुद्धि की ना होना जडता कहलाता है। कुछ जातक जन्म से बुद्धिहीन हाते है।

11-रक्तरोग - रक्त से सम्बन्धित रोग जैसे रक्ताल्पता, रक्त कैन्सर।

12- चर्मरोग - शरीर से पपडी निकलना, रूसी आदि चर्म से सम्बन्धित रोग।

3.10 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने रोगों के विषय में विस्तारपूर्वक जाना कि रोग क्या हैं इनका वर्गीकरण ज्योतिष शास्त्र में किस प्रकार किया गया है । वस्तुत: रोगों के प्रसंग में आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान होना ज्योतिष शास्त्र के साथ-साथ परमावश्यक होता है , इसलिए प्राचीन काल में ज्योतिषी और वैद्य का समन्ध जुड़वे भाई जैसा था । रोगों की पहचान व आंकलन हेतु जन्मकुंडली में षष्ठ – अष्टम द्वादश भाव का विचार बहुत महतवपूर्ण है , यदि षष्ठेश की दशा हो और वह पाप्युत हो तो अवश्य स्व दशा में रोग उत्पन्न करता है । तात्पर्य यह है कि रोग ज्ञान के सन्दर्भ में ग्रह – राशि – भावों का महत्व पूर्ण स्थान है उसके कुछ विन्दु इस प्रकार हैं -

1. **भावों का महत्व**
    - **षष्ठ भाव**: रोग, शत्रु और कष्ट का प्रमुख भाव।
    - **अष्टम भाव**: दीर्घकालिक, गुप्त या असाध्य रोग।
    - **द्वादश भाव**: अस्पताल, शैय्या-वास, व्ययजन्य रोग।
    - **लग्न और लग्नेश**: शरीर की मूल शक्ति और स्वास्थ्य।
2. **ग्रहों से संबंधित व्याधियाँ**
    - **सूर्य**: हृदय, नेत्र, रक्तचाप, ज्वर।
    - **चंद्र**: मानसिक रोग, कफ, जलजन्य विकार।
    - **मंगल**: रक्त, चोट, शल्य, ज्वर।
    - **बुध**: त्वचा, स्नायु, वाणी, मानसिक चंचलता।
    - **गुरु**: यकृत, मोटापा, मधुमेह।

- **शुक्र**: मूत्र, प्रजनन, श्वेत रोग।
- **शनि**: दीर्घ रोग, वात, अस्थि, पक्षाघात।
- **राहु-केतु**: विषजन्य, आकस्मिक, रहस्यमय या मानसिक रोग।

3. **दोष और योग**
   - षष्ठ/अष्टम/द्वादश भाव पर पापग्रहों का प्रभाव।
   - लग्न या लग्नेश का दुर्बल होना।
   - पापग्रहों की युति/दृष्टि से **व्याधि योग** बनते हैं।
   - शुभ ग्रहों की दृष्टि/बल से रोग में कमी या निवारण।
4. **दशा-अंतरदशा का प्रभाव**
   - रोग का प्रकट होना या बढ़ना प्रायः संबंधित ग्रहों की दशा में होता है।
   - शुभ दशा में रोग से राहत या उपचार संभव।
5. **निवारण संकेत**
   - ग्रहबल, शुभ दृष्टि, राजयोग या धनयोग होने पर उपचार सफल।
   - दान, जप, व्रत, औषधि और जीवनशैली सुधार के संकेत।

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर भाग-1

1.सत्य , 2. सत्य , 3.सत्य , 4.सत्य , 5.असत्य , 6. सत्य , 7. असत्य , 8. सत्य

भाग-2

1.6 , 2. वेदांग , 3. धातुएं , 4. सिंराशि

3.12 संदर्भित पाठ्य सामग्री

1. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी
2. चरक संहिता सूत्र स्थान महर्षि चरक/ श्रुत संहिता
3. प्रश्नमार्ग नारायण मूर्ति , गदावली - चक्रधर जोशी , ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार -प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी
4. माधव निदान - माधवकर

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1- जिनका कारण माता-पिता से जन्मना प्राप्त कोई दोष होता है, वे रोग क्या कहलाते है? विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिए।

2- तीनों दोषों के मिश्रण (सन्निपात) से जो रोग रोग उत्पन्न होते हैं, वे रोग क्या कहलाते है? आयुर्वेद और ज्योतिषीय दृष्टि से विचार कीजिए।

3- रोगों का वर्गीकरण क्या है, साथ ही रोगों के प्रकार का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिए।

4- चर्मरोग में कौन कौन सेग्रह योग प्रमुख मने जाते है ?

5- त्रिदोष से क्या तात्पर्य है।

इकाई-4 त्रिदोष जन्य व्याधियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उदेश्य
4.3 त्रिदोष परिचय
4.4 त्रिदोष की परिभाषा
4.5 त्रिदोष का स्वरुप
4.6 दोष की अवस्था
4.6.1 त्रिदोष और पंचमहाभूत
4.6.2 त्रिदोष के विविध कार्य
4.7 वात दोष
4.8 पित्त दोष
4.9 कफ दोष
4.9.1 त्रिदोष का संतुलन और असंतुलन
4.9.2 त्रिदोष सिद्धांत का महत्व
4.9.3 ज्योतिषशास्त्र के अनुसार त्रिदोषजन्य व्याधियाँ
4.9.4 वात दोषजन्य व्याधियाँ- ग्रह कारण
4.9.5 पित्त दोषजन्य व्याधियाँ
4.9.6 द्विदोष एवं त्रिदोषजन्य रोग
4.9.7 भावों के अनुसार दोष प्रभाव
4.10 बोधात्मक प्रश्न
4.11 सारांश
4.12 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
4.13 सन्दर्भित पाठ्यक्रम
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों यह इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धांत (बी.ए.एस.एल.N-321 खण्ड -3 **"ज्योतिष शास्त्र एवं व्याधि विवेचन"** नामक खण्ड की चतुर्थ इकाई है । जिसका शीर्षक "**त्रिदोष जन्य व्याधियाँ**" है । इस से पूर्व आपने ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधियों के विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया । अब इसी क्रम में हम त्रिदोष जन्य व्याधियों के विषय में विस्तार–पूर्वक पढेंगे । अब तक आपने आयुर्वेद के विषय में जाना कि आयुर्वेद भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्वति है, जिसका अभ्युदय वेदों से हुआ है, और यह ऋषि परम्परा भगवान् धन्वन्तरी से लेकर अग्निवेश, सुश्रुत–चरक–वाग्भट आदि से चली आ रही है । वस्तुत: यह हमारे पूर्वजों की विरासत एवं हम पर उपकार है कि इस शास्त्र के ज्ञान इस पृथ्वी लोक तक जीव मात्र के कल्याण के लिए दिया । आयुर्वेद शास्त्र में दोषजन्य व्याधियों का आकलन त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) के आधार पर होता है । इन्हीं त्रिदोष जन्य व्याधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे ।

4.2 उदेश्य

- ❖ इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ज्योतिषशास्त्र के सिद्धांतों से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ आप जान पायेंगे कि त्रिदोष क्या है, साथ ही त्रिदोष के कुपित होने पर कौन- कौन सी व्याधियाँ उत्पन्न होती है ।
- ❖ वस्तुत: ज्योतिष शास्त्र में किस प्रकार व्याधियों का विचार किया जाता है । इस सिद्धांत का बोध कर सकेंगे ।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र में त्रिदोषजन्य व्याधियों के योग कैसे – कैसे बनते हैं, इन सब विषयों का गहनता से अध्ययन कर सकेंगे ।

4.3 त्रिदोष परिचय

आयुर्वेद का मूल आधार त्रिदोष सिद्धांत है । आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर पंचमहाभूतों से निर्मित है और इन्हीं पंचमहाभूतों के संयोजन से तीन दोष—वात, पित्त और कफ—उत्पन्न होते हैं। ये दोष शरीर की समस्त शारीरिक, मानसिक एवं जैविक क्रियाओं का संचालन करते हैं। दोषों की सम अवस्था स्वास्थ्य की और विषम अवस्था रोग की जनक होती है ।

4.4 त्रिदोष की परिभाषा

जो शरीर को दूषित करने की क्षमता रखते हैं, वे दोष कहलाते हैं। आचार्य चरक के अनुसार— **"वात: पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषा: समासत:।"** दोष शब्द की व्युत्पत्ति **'दोष'** शब्द संस्कृत की *'दुष्'* धातु से बना है, जिसका अर्थ है— दूषित करना या विकृत करना। जो तत्व शरीर में स्थित रहकर, असंतुलित होने पर शरीर को दूषित कर रोग उत्पन्न करें, उन्हें **दोष** कहा जाता है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर में तीन मुख्य दोष होते हैं— **"वात: पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषा: समासत:।"** *(चरक संहिता)* अर्थात्—वात, पित्त और कफ — ये तीन दोष संक्षेप में त्रिदोष कहलाते हैं ।

4.5 त्रिदोष का स्वरुप

वात, पित्त और कफ को शरीर के दोष कहा जाता है; राजस और तमस को फिर से मानसिक गुणों के रूप में नामित किया गया है। वात, पित्त और कफ, ये तीनों शारीरिक दोष हैं, और रजस और तमस भी। ये दोनों मानसिक दोष हैं। शरीर और मन ही रोग और स्वास्थ्य का आधार हैं। इनमें से वात, पित्त और कफ शारीरिक रोगों का कारण बनते हैं। जब तक ये तीनों संतुलन की स्थिति में रहते हैं, स्वास्थ्य बना रहता है। इन तीनों को 'धातु' भी कहा जाता है; यानी वे शरीर को पोषण प्रदान करते हैं। लेकिन जब वे दूषित हो जाते हैं, तो वे रोगों का कारण बनते हैं, और उस समय उन्हें 'दोष' कहा जाता है । केवल दो प्रकार के मानसिक दोष होते हैं। यद्यपि सत्व, रजस और तमस तीन गुण हैं, इन तीनों में से सत्व स्वयं शुद्ध और अपरिवर्तनीय है। यदि इसे शुद्ध और अपरिवर्तनीय नहीं माना जाता है, तो मोक्ष प्राप्त करना असंभव है; क्योंकि सत्व के बिना सच्चा ज्ञान संभव नहीं है। जब सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है, तब केवल सत्व ही शेष रहता है, रजस और तमस या तो शेष नहीं रहते या वे दब जाते हैं। क्योंकि सत्व अपरिवर्तनीय है, इसलिए सच्ची जानकारी प्राप्त होने पर ही मुक्ति मिलती है। इसलिए, सत्व को मानसिक दोषों में नहीं गिना जाता है । जो जैविक तत्व पंचमहाभूतों से उत्पन्न होकर शरीर की समस्त शारीरिक, मानसिक एवं जैविक क्रियाओं का संचालन करते हैं तथा सम अवस्था में स्वास्थ्य और विषम अवस्था में रोग उत्पन्न करते हैं, उन्हें **त्रिदोष** कहा जाता है ।

4.6 दोष की अवस्था

त्रिदोष की विशेषता यह है कि वे—

- **सम अवस्था में** शरीर को धारण करते हैं (धातु समान कार्य)
- **विषम अवस्था में** शरीर को दूषित करते हैं (दोष समान कार्य)

इसी कारण इन्हें *दोष* और *धातु* दोनों कहा गया है।

4.6.1 त्रिदोष और पंचमहाभूत

त्रिदोष और पंचमहाभूत का समंध निम्नवत है-

दोष पंचमहाभूत

वात आकाश + वायु

पित्त अग्नि + जल

कफ जल + पृथ्वी

इस प्रकार त्रिदोष पंचमहाभूतों के कार्यात्मक रूप हैं।

4.6.2 त्रिदोष के विविध कार्य

- **वात दोष** — शरीर की समस्त गतियों, संचार एवं तंत्रिका क्रियाओं को नियंत्रित करता है।
- **पित्त दोष** — पाचन, चयापचय, ऊष्मा एवं बुद्धि का नियंता है।
- **कफ दोष** — स्थिरता, संरचना, स्नेहन एवं बल प्रदान करता है।

4.7 वात दोष

जो तत्व शरीर की क्रियाओं का संचालन करें, संतुलन में स्वास्थ्य बनाए रखें तथा असंतुलन में रोग उत्पन्न करें, वे वात, पित्त और कफ ही त्रिदोष कहलाते हैं। त्रिदोष की उत्पत्ति

(पंचमहाभूत के आधार पर) कही गई है। वात दोष शरीर की सभी प्रकार की गतियों का नियंता है।

वात- का स्वरुप और गुण -: रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विषद, और खर बात के मुख्य गुण ये हैं: रूक्ष (रूखा), शीतल (ठंडा), लघु (हल्का), सूक्ष्म, चल (गति-मान), विषद (जो पिचिल न हो), और खर (खुरदार)। इन गुणों से विपरीत गुण (स्निग्ध, उष्ण, गुरु, स्थूल, मृदु, पिचिल, श्लक्षण) वाले द्रव्यों से बात शांत होती है। **स्थान-** पक्वाशय, कटि, जांघ, हड्डियाँ, कान, त्वचा।

कार्य-: श्वसन, परिसंचरण, त्रिका तंत्र का संचालन, मल-मूत्र निष्कासन, वाणी और गति

- **वृद्धि लक्षण:-** कब्ज, गैस, कंपकंपी, अनिद्रा, भय, जोड़ों का दर्द।

4.8 पित्त दोष

पित्त दोष शरीर की अग्नि एवं पाचन शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। चिकना, गर्म, तीखा, तरल, खट्टा, बहने वाला और चटपटा; किसी पदार्थ में ये गुण पित्त को शांत करते हैं, जिसमें विपरीत गुण होते हैं। पित्त के मुख्य गुण हैं चिकना, गर्म, तीखा, तरल, खट्टा, बहने वाला और तीखा। विपरीत गुणों वाले पदार्थ पित्त को शीघ्र शांत करते हैं। यहां 'सनेहा' शब्द का तात्पर्य थोड़ी चिकनाई से है। जैसा कि 20वें अध्याय में उल्लेख किया गया है: 'गर्मी, तीखापन, तरलता, हल्का चिकनापन', आदि। अतः, दूध जैसे चिकने और ठंडे पदार्थों से पित्त शांत होता है। पित्त के विपरीत गुण चिकने, ठंडे, कोमल, घने, कसैले, कड़वे या मीठे होते हैं। इन गुणों वाले पदार्थ पित्त को शांत करते हैं। पित्त के लिए दो स्वाद बताए गए हैं: तीखा और खट्टा। पित्त स्वभाव से तीखा होता है और पाचन प्रक्रिया के दौरान खट्टा हो जाता है। जैसा कि सुश्रुत ने कहा:- पित्त तीखा, तरल, दुर्गंधयुक्त, नीला, पीला, गर्म, तीखा स्वाद वाला और पचने पर खट्टा होता है। वैकल्पिक रूप से, चरक के अनुसार, अग्नि तत्व की प्रधानता के कारण खट्टा स्वाद पित्त का एक स्वाभाविक गुण माना जा सकता है। विपरीत गुणों वाले दोषों को शांत करने का नियम केवल राहत के लिए है, शुद्धिकरण के लिए नहीं; इसलिए 'प्रशाम्यति' (शांत करने वाला) शब्द का प्रयोग किया जाता है। अन्यथा, चूंकि पित्त में प्रवाह का गुण होता है, इसलिए हमेशा स्थिर करने वाली दवाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए। हालांकि, पित्त के लिए विरेचन (दस्त) से बेहतर कोई दवा नहीं है। यहां शुद्धिकरण चिकित्सा को समझना आवश्यक है। दस्त की दवा पित्त को अत्यधिक प्रवाहित करती है और उसे बाहर निकाल देती है, लेकिन पाचन संबंधी दवाओं की तरह उसे आंतरिक रूप से नष्ट नहीं करती है।

भारी, ठंडा, मुलायम, चिकना, मीठा, स्थिर, लसलसा, ये गुण कफ को शांत करते हैं, जिसके विपरीत गुण होते हैं। भारी, ठंडा, मुलायम, चिकना, मीठा, स्थिर, लसलसा, ये श्लेष्मा या कफ के मुख्य गुण हैं। कफ के गुण उसके विपरीत गुणों (हल्के, गर्म, तीखे, सूखे, चटपटे आदि स्वाद, बहने वाले, साफ) से शांत हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि विपरीत गुणों वाले पदार्थों का सेवन करने से श्लेष्मा शांत हो जाती है। यहां, गुणों का शांत होना गुणों के स्वामी का शांत होना दर्शाता है, और गुणों में वृद्धि गुणों के स्वामी में वृद्धि दर्शाती है—यही अभिप्राय है। इसे दूसरे तरीके से भी कहा जाता है: जैसे गर्म पानी ठंडक को शांत करता है, जो पानी का मूल गुण है।

मीठा स्वाद, भले ही पचने के बाद तीखा स्वाद में बदल जाए, कफ में वृद्धि का कारण बनता है। इसलिए, पदार्थों के स्वाद, प्रभाव और पाचन के बाद के प्रभावों पर विचार करना चाहिए। जैसा कि चरक ने कहा- पदार्थ स्वाद, प्रभावकारिता, पाचन के बाद के प्रभाव या विशिष्ट क्रिया के माध्यम से क्रियाएं करते हैं।

इनमें से सबसे शक्तिशाली इकाई अन्य सभी इकाइयों को दरकिनार करते हुए कार्य करती है। वाग्भट में कहा गया है:

- **पित्त के गुण**: तैलीय, गर्म, तीखा, तरल, खट्टा, बहने वाला और चटपटा।
- **पित्त को संतुलित करना**: विपरीत गुणों वाले पदार्थ (जैसे, चिकना, ठंडा, नरम, घना, क्षारीय, कड़वा, मीठा) पित्त को शीघ्र शांत करते हैं।
- **कफ के गुण**: भारी, ठंडा, कोमल, चिकना, मीठा, स्थिर और लसलसा।
- **कफ को संतुलित करना**: विपरीत गुण (हल्का, गर्म, तीखा, सूखा, चटपटा आदि) कफ को शांत करते हैं।

(ख) गुण- उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, लघु, सर

(ग) स्थान- आमाशय, छोटी आँत, यकृत, प्लीहा, रक्त

(घ) कार्य

- पाचन एवं चयापचय
- तापमान नियंत्रण
- भूख, प्यास, दृष्टि
- बुद्धि और विवेक

(ङ) वृद्धि लक्षण- अम्लपित्त, जलन, अधिक प्यास, क्रोध, त्वचा रोग

4.9 कफ दोष

कफ दोष शरीर को स्थिरता, शक्ति और पोषण प्रदान करता है।

(ख) गुण- गुरु, शीत, स्निग्ध, मंद, स्थिर, श्लक्ष्ण

(ग) स्थान- छाती, फेफड़े, आमाशय, सिर, जोड़

(घ) कार्य

- शरीर की संरचना
- स्नेहन और बल
- रोग प्रतिरोधक शक्ति
- मानसिक शांति

(ङ) वृद्धि लक्षण- आलस्य, भारीपन, मोटापा, कफज विकार, सर्दी-खाँसी

4.9.1 त्रिदोष का संतुलन और असंतुलन

- किसी पदार्थ का प्रभाव उसके सबसे मजबूत गुण द्वारा निर्धारित होता है, जो अन्य गुणों पर हावी हो जाता है।
- उदाहरण के लिए, शहद में स्वाद हल्का होता है, लेकिन पाचन के बाद इसका प्रभाव तीव्र (तीखा) होता है, जो कफ को शांत करने में मदद करता है।
- उपचार योग्य बीमारियों को स्थान, खुराक और समय को ध्यान में रखते हुए विपरीत गुणों वाली दवाओं द्वारा कम किया जाता है।

- इस ग्रंथ में दोष (रस), शक्ति, रोग का प्रकार, मन, उपयुक्तता, औषधि, पाचन अग्नि, आयु और स्वभाव जैसे अन्य कारकों पर भी विचार करने का सुझाव दिया गया है।
- असाध्य रोगों का इलाज कराने की सलाह नहीं दी जाती है; केवल उन्हीं बीमारियों को खत्म किया जा सकता है जिनका इलाज संभव है।
- रोग मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं: उपचार योग्य और लाइलाज। इलाज योग्य बीमारियों को आगे आसानी से ठीक होने वाली और मुश्किल से ठीक होने वाली बीमारियों में विभाजित किया गया है।
- असाध्य रोग भी दो प्रकार के होते हैं: प्रबंधनीय ('याप्य') और अप्रबंधनीय ('अनुपक्रम्य')।
- जिन बीमारियों का प्रबंधन किया जा सकता है, वे ऐसी बीमारियां हैं जो उचित दवा के सेवन से नियंत्रित रहती हैं लेकिन पूरी तरह से खत्म नहीं होती हैं।
- असाध्य रोगों को न तो नष्ट किया जा सकता है और न ही दबाया जा सकता है।
- सम दोष ⟶ स्वास्थ्य
- विषम दोष ⟶ रोग

प्रत्येक व्यक्ति की जन्मजात प्रकृति (वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, त्रिदोषज) होती है, जिसके अनुसार आहार-विहार अपनाना चाहिए।

4.9.2 त्रिदोष सिद्धांत का महत्व

- **रोग निदान में सहायक**
- **व्यक्तिगत चिकित्सा प्रणाली**
- **आहार और जीवनशैली निर्धारण**
- **रोग निवारण एवं स्वास्थ्य संरक्षण**

4.9.3 ज्योतिष शास्त्र के अनुसार त्रिदोषजन्य व्याधियाँ

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मानव शरीर, ग्रहों और पंचमहाभूतों का गहरा संबंध है। ग्रहों के प्रभाव से **वात, पित्त और कफ** दोष प्रभावित होते हैं। जब कुंडली में संबंधित ग्रह दूषित, नीच, अस्त, पापग्रह से पीड़ित या अशुभ भावों में स्थित होते हैं, तब **त्रिदोष असंतुलन** उत्पन्न होकर विभिन्न व्याधियाँ होती हैं।

- **त्रिदोष और ग्रहों का संबंध**

दोष प्रमुख ग्रह

वात दोष शनि, राहु

पित्त दोष सूर्य, मंगल

कफ दोष चंद्र, शुक्र, बृहस्पति

4.9.4 वात दोषजन्य व्याधियाँ- ग्रह कारण

- शनि, राहु की पीड़ा
- लग्न, षष्ठ, अष्टम, द्वादश भाव में शनि/राहु

प्रमुख व्याधियाँ

- गठिया (Arthritis)

- जोड़ों का दर्द
- लकवा
- स्नायु दुर्बलता
- कंपकंपी
- अनिद्रा
- कब्ज
- साइटिका
- भय, चिंता, मानसिक अस्थिरता

ज्योतिषीय संकेत

- शनि नीच या पापग्रही
- राहु लग्न या चंद्र से पीड़ित

4.9.5 पित्त दोषजन्य व्याधियाँ

ग्रह कारण- सूर्य एवं मंगल की पीड़ा, अग्नि तत्व की अधिकता।

प्रमुख व्याधियाँ- अम्लपित्त, जलन, अल्सर, रक्त विकार, उच्च रक्तचाप, बुखार, त्वचा रोग, क्रोध, चिड़चिड़ापन, नेत्र रोग।

ज्योतिषीय संकेत -: सूर्य नीच (तुला) मंगल पाप दृष्टि से पीड़ित।

कफ दोषजन्य व्याधियाँ - चंद्र, शुक्र, बृहस्पति की अशुभ स्थिति से जल तत्व की अधिकता।

प्रमुख व्याधियाँ-: सर्दीखाँसी-, अस्थमा, मोटापा, मधुमेह, कफ जमना, थायरॉइड, आलस्य, अवसाद।

ज्योतिषीय संकेत- चंद्रमा क्षीण या ग्रस्त, शुक्र पापग्रह से पीड़ित।

4.9.6 द्विदोष एवं त्रिदोषजन्य रोग

दोष संयोजन संभावित रोग

वात-पित्त	स्नायु रोग, बुखार, अल्सर
पित्त-कफ	मधुमेह, त्वचा रोग
वात-कफ	अस्थमा, गठिया
त्रिदोष	दीर्घकालीन व जटिल रोग

4.9.7 भावों के अनुसार दोष प्रभाव

भाव	संबंधित अंग	संभावित दोष
लग्न	सम्पूर्ण शरीर	सभी दोष
षष्ठ	रोग भाव	दोष असंतुलन
अष्टम	दीर्घ रोग	त्रिदोष
द्वादश	अस्पताल	जीर्ण व्याधि

4.10 बोधात्मक प्रश्न

1. त्रिदोष सिद्धांत किस आयुर्वेदिक ग्रंथ से संबंधित है?

क. चरक संहिता
ख. सुश्रुत संहिता
ग. अष्टांग हृदय
घ. उपरोक्त सभी
2. त्रिदोष के अंतर्गत कौन-कौन से दोष आते हैं?
क. वात, पित्त, कफ
ख. रक्त, मांस, मेद
ग. वात, रक्त, कफ
घ. पित्त, कफ, मज्जा
3. शरीर में गति और संचार का कार्य कौन-सा दोष करता है?
क. पित्त
ख. कफ
ग. वात
घ . रक्त
4. पाचन और चयापचय का कार्य किस दोष से संबंधित है?
क . वात
ख. कफ
ग . पित्त
घ. मेद
5. स्थिरता और संरचना प्रदान करने वाला दोष कौन-सा है?
क. वात
ख. पित्त
ग. कफ
घ. रक्त
6. त्रिदोषों का संतुलन किसका संकेत है?
क. रोग
ख. स्वास्थ्य
ग. वृद्धावस्था
घ. दुर्बलता
7. वात दोष किन तत्वों से बना होता है?
क. अग्नि और जल
ख. पृथ्वी और जल
ग. वायु और आकाश
घ. पृथ्वी और अग्नि
8. पित्त दोष का प्रमुख गुण क्या है?
क. शीत
ख. गुरु

ग. उष्ण

घ. स्निग्ध

9. कफ दोष का प्रमुख कार्य क्या है?

क . पाचन

ख. गति

ग. स्नेहन और स्थिरता

घ. उत्सर्जन

10. त्रिदोष असंतुलन का परिणाम क्या होता है?

अ. स्वास्थ्य

ख. बल

ग. रोग

घ. दीर्घायु

4.11. सारांश

त्रिदोष सिद्धांत आयुर्वेद की आत्मा है। यह न केवल रोगों की उत्पत्ति और उपचार को स्पष्ट करता है, बल्कि स्वस्थ, संतुलित और दीर्घ जीवन जीने का मार्ग भी दिखाता है। आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर का निर्माण और संचालन **त्रिदोष सिद्धांत** पर आधारित है। त्रिदोष में **वात, पित्त और कफ** शामिल हैं। ये तीनों दोष पंचमहाभूतों से बने होते हैं और शरीर की सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

वात दोष- वायु और आकाश तत्व से बना होता है। इसका मुख्य कार्य शरीर में गति, संचार, श्वसन, बोलना, चलना तथा स्नायु क्रियाओं को नियंत्रित करना है। वात दोष असंतुलित होने पर जोड़ों में दर्द, कंपकंपी, कब्ज तथा अनिद्रा जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

पित्त दोष - अग्नि और जल तत्व से निर्मित होता है। यह पाचन, भूख, तापमान नियंत्रण, चयापचय तथा बुद्धि से संबंधित कार्य करता है। पित्त के बढ़ने से जलन, अम्लता, क्रोध, अधिक पसीना और त्वचा रोग हो सकते हैं।

कफ दोष - पृथ्वी और जल तत्व से बना होता है। यह शरीर को स्थिरता, बल, स्नेहन और संरचना प्रदान करता है। कफ दोष के असंतुलन से आलस्य, मोटापा, कफ जमना, सर्दी-खांसी और भारीपन महसूस होता है। त्रिदोषों का संतुलन ही स्वास्थ्य का आधार है, जबकि इनका असंतुलन रोग का कारण बनता है। उचित आहार, विहार और दिनचर्या अपनाकर त्रिदोषों को संतुलित रखा जा सकता है। आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य त्रिदोष संतुलन द्वारा स्वस्थ जीवन प्रदान करना है।

4.12 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. घ , 2. क , 3. ग , 4.ग , 5. ग , 6. ग , 7. ग , 8. घ , 9. ग , 10. ग

4.13 सन्दर्भित पाठ्यक्रम

1. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी
2. चरक संहिता सूत्र स्थान
3. सुश्रुत संहिताप्रश्नमार्ग

4. माधव निदान
5. गदावाली
6. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी श्री ला.ब. शा. रा. सं. विद्यापीठ नई-दिल्ली
7. वीर सिंहावलोक
8. स्वस्थ वृत्त विज्ञान दिल्ली , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम { राम हर्ष सिंह .डॉ }

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.त्रिदोष का विस्तार पूर्वक परिचय दीजिए।

2. त्रिदोष के महत्व पर प्रकाश डालिए।

3. त्रिदोष की साम्य अवस्था का वर्णन कीजिए।

4. आयुर्वेद के अनुसार आरोग्यता के लिए त्रिदोष की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

इकाई -5 ज्योतिषीय चिकित्सा

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उदेश्य
5.3 त्रिदोष परिचय
5.4 चिकित्सा ज्योतिष का आधार
5.4.1 चिकित्सा ज्योतिष के प्रमुख उपकरण
5.4.2 रत्न चिकित्सा
5.4.3 औषधि एवं प्राकृतिक चिकित्सा
5.4.4 दान
5.4.5 स्नान
5.5 यंत्र एवं तंत्र चिकित्सा
5.6 ग्रह शांति एवं हवन
5.6.1 ग्रह शान्ति के प्रमुख कारण
5.6.2 ग्रह शान्ति की विधियाँ
5.6.3 मंत्र जप विधि
5.6.4 नवग्रह शान्ति पूजा
5.6.5 ग्रह शांति एवं हवन
5.7 मानसिक रोगों में ज्योतिषीय चिकित्सा
5.7.1 प्रमुख मानसिक रोग एवं ज्योतिषीय कारण
5.7.2 मानसिक रोगों में ज्योतिषीय चिकित्सा के उपाय
5.8 बोधात्मक प्रश्न
5.9 सारांश
5.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों यह इकाई चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धांत (बी.ए.एस.एल.N-321 खण्ड -3 "ज्योतिष शास्त्र एवं व्याधि विवेचन" नामक खण्ड की चतुर्थ इकाई है। जिसका शीर्षक "**ज्योतिषीय चिकित्सा** " है। इस से पूर्व आपने ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधियों के विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। अब इसी क्रम में हम त्रिदोषादि व्याधियों के विषय में विस्तार–पूर्वक पढेंगे। अब तक आपने आयुर्वेद के विषय में जाना कि आयुर्वेद भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्वति है, जिसका अभ्युदय वेदों से हुआ है और यह ऋषि परम्परा भगवान् धन्वन्तरी से लेकर अग्निवेश , सुश्रुत–चरक–वाग्भट् आदि से चली आ रही है। वस्तुत: यह हमारे पूर्वजों की विरासत एवं हम पर उपकार है कि इस शास्त्र के ज्ञान इस पृथ्वी लोक तक जीव मात्र के कल्याण के लिए दिया। आयुर्वेद शास्त्र में दोषजन्य व्याधियों का आंकलन त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) के आधार पर होता है। इन्हीं त्रिदोषजन्य व्याधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

5.2 उदेश्य

- ❖ इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप ज्योतिष शास्त्र के सिद्धांतों से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ आप जान पायेंगे कि त्रिदोष क्या है, साथ ही त्रिदोष के कुपित होने पर कौन- कौन सी व्याधियाँ उत्पन्न होती है।
- ❖ वस्तुत: ज्योतिषशास्त्र में किस प्रकार व्याधियों का विचार किया जाता है। इस सिद्धांत का बोध कर सकेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र में त्रिदोषजन्य व्याधियों के योग कैसे–कैसे बनते हैं , इन सब विषयों का गहनता से अध्ययन कर सकेंगे।

5.3 विषय परिचय

ज्योतिषीय चिकित्सा भारतीय प्राचीन ज्ञान पर आधारित एक समग्र उपचार पद्धति है, जिसमें **ज्योतिष, आयुर्वेद, मंत्र, रत्न, ग्रह-शांति और मानसिक संतुलन** के माध्यम से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोगों का उपचार किया जाता है। यह चिकित्सा शरीर के साथ-साथ **कर्म और ग्रह प्रभाव** को भी ध्यान में रखती है।

5.4 चिकित्सा ज्योतिष का आधार

ज्योतिष के अनुसार मानव जीवन पर **नवग्रहों** का सीधा प्रभाव पड़ता है। जब ग्रह अशुभ या दुर्बल होते हैं, तब व्यक्ति को शारीरिक रोग, मानसिक तनाव, आर्थिक बाधा, पारिवारिक समस्याएँ, का सामना करना पड़ता है। ज्योतिषीय चिकित्सा का उद्देश्य इन ग्रह दोषों को संतुलित करना है। जीवन की समस्या एवं संकटों का निवारण तथा जीवन के समस्त पहलुओं का समयबद्ध विचार कर उनके सही पूर्वानुमान की तकनीक बतानेवाले ज्योतिष शास्त्र ने इष्ट प्राप्ति एवं अनिष्ट परिहार के लिए पाँच प्रकार के उपायों का प्रतिपादन किया है। वेदांग शास्त्रों में अकेला ज्योतिष शास्त्र ही ऐसा शास्त्र है जो अभीष्ट की सिद्धि के लिए अनिष्टों के परिहार के लिए तथा जीवन की सभी समस्याओं और संकटों के समाधान के लिए सटीक उपायों

का प्रतिपादन करता है। इन उपायों में पाँच उपाय प्रमुख हैं- **(i) मन्त्र, (ii) रत्न, (iii) औषधि, (iv) दान एवं (v) स्नान।**

ग्रहों के शुभ प्रभाव की पात्रा को बढ़ाने तथा उनके अशुभ प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए इस शास्त्र में उक्त पाँचों प्रकार के उपायों का प्रतिपादन इस शास्त्र के ऋषियों एवं आचायों ने किया है । इन उपायों को इस शास्त्र के मनीषियों ने ग्रह चिकित्सा कहा। वस्तुतः ग्रहों के शुभप्रभाव में वृद्धि और अशुभ प्रभाव से छुटकारा पाने की वह रीति; जिसमें मुख्यतया मन्त्र, रत्न, औषधि, दान एवं स्नान का उपयोग किया जाता है ग्रह चिकित्सा कहलाती है । फलित ग्रन्थों में स्थान स्थान पर ग्रह चिकित्सा का उल्लेख मिलता है। साथ ही इस विषय की प्रामाणिकता एवं लोकोपयोगिता के कारण इसका सर्वाङ्गीण विवेचन करने के लिए भारतीय वाङ्मय में स्वतन्त्र शास्त्रों की रचना हुई है। मन्त्र शास्त्र, रत्न विज्ञान, आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्र ऐसे शास्त्र है, जिनमें यथाक्रमेण मन्त्र, रत्न, औषधि, दान एवं स्नान के समस्त शास्त्रीय पहलुओं का विस्तार के साथ वर्णन एवं विवेचन किया गया है। इन उपायों में मन्त्र की महिमा एवं उसका प्रभाव सर्वोपरि है। अतः विश्वविद्यालयीय शिक्षा पद्धति में पुनश्चर्या पाठ्यक्रम के माध्यम से ग्रह चिकित्सा के इस पहिले पाठ्यक्रम में हम जीवन की समस्या एवं संकटों के समाधान के सबसे विश्वसनीय साधन के रूप में मन्त्र एवं मन्त्र-साधना का विचार करेंगे।

ग्रहों एवं रोगों का संबंध

ग्रह	**संबंधित रोग**
सूर्य	हृदय, नेत्र, हड्डी
चंद्र	मानसिक रोग, अनिद्रा
मंगल	रक्त, चोट, क्रोध
बुध	त्वचा, तंत्रिका
गुरु	मधुमेह, मोटापा
शुक्र	मूत्र, यौन रोग
शनि	जोड़, लकवा, डर
राहु	भ्रम, एलर्जी
केतु	रहस्यमय रोग

5.4.1 चिकित्सा ज्योतिष के प्रमुख उपकरण

मंत्र चिकित्सा- मन्त्र व्यक्ति सुप्त या लुप्त शक्ति को जागृत कर महनीय शक्ति के साथ सामञ्जस्य करने वाला गूढ़ ज्ञान मन्त्र कहलाता है। यह अपने साधकों को एक हाथ से मुक्ति और दूसरे हाथ से मुक्ति प्रदान करता है। साधक अपनी लौकिक, अलौकिक एवं पार लौकिक सभी कामनाओं की पूर्ति इसके द्वारा कर सकता है। जीवन की कोई भी और कैसी भी समस्या हो मन्त्र-साधना द्वारा उसका निश्चित या पक्का समाधान किया जा सकता है । विशेष ग्रहों के लिए बीज मंत्र एवं वैदिक मंत्रों का जप कराया जाता है, जैसे:-

- सूर्य मंत्र – आत्मबल हेतु
- चंद्र मंत्र – मानसिक शांति हेतु
- शनि मंत्र – कष्ट निवारण हेतु

5.4.2 रत्न चिकित्सा

(ii) रत्न ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने तथा शुभ प्रभाव को बढ़ाने के लिए रत्न धारण की परिपाटी सुदूर प्राचीन काल से प्रचलित है। रत्न की यह विशेषता है कि वे ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के साथ-साथ उनके शुभ प्रभाव को बढ़ाते हैं। जन्म कुंडली के अनुसार उचित रत्न धारण कराया जाता है।

- माणिक्य – सूर्य
- मोती – चंद्र
- पन्ना – बुध
- नीलम – शनि
- **रत्न धारण विधि**
- कुंडली अनुसार उचित रत्न धारण करने से ग्रह बलवान होते हैं।

उदाहरण:

- सूर्य – माणिक्य
- चंद्र – मोती
- शनि – नीलम
- *रत्न केवल योग्य ज्योतिषी की सलाह से ही धारण करें।*

5. 4. 3 औषधि एवं प्राकृतिक चिकित्सा

ग्रहों का प्रभाव व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं को कभी सकारात्मक और कभी नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और फिर तन और मन के माध्यम से उसके जीवन पर प्रभाव डालता है। अतः ग्रहों के प्रभाव से पीड़ित तन और मन में शक्ति एवं स्फूर्ति का संचार करने के लिए तथा उन्हें चुस्त और दुरुस्त करने के लिए औषधियों का सेवन किया जाता है।

- ग्रह अनुसार औषधियाँ
- रंग चिकित्सा
- धातु चिकित्सा
- आहार एवं दिनचर्या सुधार

5.4.4 दान

जन्म-जन्मान्तरों के अर्जित कर्मों के प्रभाववश मानव को इस जीवन में कभी अच्छा और कभी बुरा फल मिलता है। इसके पीछे शुभ एवं अशुभ कर्म ही कारण है। इन अशुभ कर्मों के प्रायश्चित्त तथा शुभ कर्मों के पुण्य को बढ़ाने के लिए उनके सूचक ग्रहों के अनुसार दान करने का विधान इस शास्त्र में बतलाया गया है।

दान एवं व्रत

ग्रहों को प्रसन्न करने हेतु विशेष दान और व्रत किए जाते हैं।

उदाहरण:

- शनि – काले तिल, लोहा, कंबल
- चंद्र – दूध, चावल, सफेद वस्त्र

5.4.5 स्नान

ग्रहों के शारीरिक प्रभाव से बचाव के लिए निश्चित औषधियों से स्नान करना ग्रहों की चिकित्सा का अंग है। पर्व काल एवं तीर्थ स्थान पर औषधि युक्त जल से स्नान करने से चमत्कारी परिणाम मिलते हैं। ग्रह चिकित्सा का सबसे विश्वसनीय साधन मन्त्र ग्रह चिकित्सा के उक्त पाँच साधनों में

से सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय साधन है । मन्त्र की जितनी विशद एवं सार्थक व्याख्या भारतीय तत्त्वज्ञ ऋषियों ने की है वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती । हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, इस्लाम, ईसाई, पारसी एवं यहूदी आदि सभी धर्मो में मन्त्र की महत्ता निर्विवाद रूप से विद्यमान और मान्य है। आज का विज्ञान भी इसकी महत्ता एवं उपयोगिता को स्वीकार करता है । साधना और अध्यात्म का गूढ़ रहस्य मन्त्र में निहित है। वह आत्मदर्शन या ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ लौकिक एवं लोकोत्तर कामनाओं की सिद्धि का समर्थ साधन है। वह ऐसी गूढ़ विद्या है, जो साधकों को एक हाथ से भोग और दूसरे हाथ से मोक्ष देने में तत्प मन्त्र विद्या अपनी अद्वितीय क्षमता के कारण हज़ारों वर्षों से विश्वभर में, आदिम समुदायों से लेकर सुशिक्षित समाज तक, सभी धर्मों में प्रचलित है, जो इसकी व्यापक विश्वसनीयता को दर्शाता है। हमारे ऋषियों ने मन्त्र-तत्त्व को समझने के लिए इसे विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है, विशेषकर तन्त्रागम और मन्त्रशास्त्र में, जो इसके गहरे सामर्थ्य और आस्था का आधार है।

तन्त्रागम एवं मन्त्रशास्त्र में मन्त्र की मुख्य परिभाषाएँ:

- **मन्त्र का अर्थ:** 'मन' का अर्थ है मनन (चिंतन/मनन करना) और 'त्र' का अर्थ है त्राण (मुक्ति/रक्षा करना)। अतः जो मनन करने से त्राण दिलाए, वह मन्त्र है।
- **हृदयंगम करना:** मन्त्र वह ज्ञान है जो मानव को आंतरिक शक्तियों को जगाने और ईश्वर या आदिम शक्ति (जीववाद) से जोड़ने में सहायक होता है।
- **व्यापक विश्वास:** यह विद्या केवल अंधविश्वास नहीं, बल्कि हजारों वर्षों से सभी जातियों, संप्रदायों और सभ्य समाजों में आस्था का एक प्रमुख साधन रहा है, जो इसकी सत्यता का सबसे बड़ा साक्ष्य है।
- **प्रक्रिया:** मन्त्र के माध्यम से मानव मन को एक सूक्ष्म, जाग्रत अवस्था में लाया जाता है, जिससे वह अलौकिक शक्तियों का अनुभव कर सके।

  इस प्रकार, मन्त्र विद्या का मूल उद्देश्य मनुष्य को आत्म-नियंत्रण, दिव्य रक्षा और आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करना है।

5.4.6 यंत्र एवं तंत्र चिकित्सा

विशेष यंत्रों की स्थापना से नकारात्मक ऊर्जा का नाश किया जाता है, जैसे:

- नवग्रह यंत्र
- महामृत्युंजय यंत्र
- शनि यंत्र
- **यंत्र स्थापना**
- ग्रहों से संबंधित यंत्रों की स्थापना घर या पूजा स्थल में की जाती है।
- नवग्रह यंत्र
- शनि यंत्र
- राहु-केतु यंत्र

5.6 ग्रह शांति एवं हवन

भारतीय वैदिक ज्योतिष में **ग्रह शान्ति** का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। नवग्रह मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष—स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह, व्यवसाय, धन और मानसिक शांति—को प्रभावित करते हैं। जब जन्म कुंडली में कोई ग्रह अशुभ, निर्बल या क्रूर स्थिति में होता है, तब

जीवन में अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में **ग्रह शान्ति** के उपाय किए जाते हैं। ग्रह शान्ति वह वैदिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा **अशुभ ग्रहों के दुष्प्रभाव को कम** कर तथा **शुभ ग्रहों की सकारात्मक शक्ति को बढ़ाया** जाता है। यह प्रक्रिया मंत्र, जप, हवन, दान और पूजा के माध्यम से की जाती है। ज्योतिष में नौ ग्रह माने गए हैं— इन ग्रहों की दशा, अंतर्दशा या गोचर के कारण व्यक्ति को रोग, मानसिक तनाव, आर्थिक हानि, वैवाहिक कलह आदि समस्याएँ हो सकती हैं।

5.6.1 ग्रह शान्ति के प्रमुख कारण

ग्रह शान्ति निम्न स्थितियों में आवश्यक मानी जाती है:

- जन्म कुंडली में ग्रह दोष
- कालसर्प दोष
- साढ़ेसाती या ढैय्या
- विवाह में विलंब
- बार-बार रोग या दुर्घटना
- व्यापार एवं आर्थिक बाधाएँ

5.6.2 ग्रह शान्ति की विधियाँ

जब जन्म कुंडली में ग्रह अशुभ, निर्बल या पीड़ित होते हैं, तब उनके दुष्प्रभाव से जीवन में अनेक बाधाएँ आती हैं। ऐसे समय में वैदिक ज्योतिष में वर्णित ग्रह शान्ति की विधियाँ अपनाकर ग्रहों के अशुभ प्रभाव को शांत किया जाता है।

5.6.3 मंत्र जप विधि- प्रत्येक ग्रह का एक विशेष मंत्र होता है। इन मंत्रों का **नियमित जप** करने से ग्रहों की नकारात्मक ऊर्जा शांत होती है।

उदाहरण:

- सूर्य: *ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः*
- चंद्र: *ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः*
- शनि: *ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः*

विशेष वैदिक मंत्रों के साथ हवन करने से वातावरण शुद्ध होता है और ग्रह दोषों का शमन होता है।

- नवग्रह हवन
- महामृत्युंजय हवन
- शनि शान्ति हवन

5.6.4 नवग्रह शान्ति पूजा

नव ग्रह शान्ति यह एक **संपूर्ण वैदिक विधि** है, जिसमें सभी नौ ग्रहों की पूजा एक साथ की जाती है। इसमें शामिल हैं:

- कलश स्थापना
- नवग्रह पूजन
- मंत्र जप
- हवन एवं आरती
- ग्रह शान्ति के लिए शास्त्रों में अनेक विधियाँ वर्णित हैं, जैसे—
- नवग्रह शान्ति पूजा

- मंत्र जप एवं अनुष्ठान
- हवन एवं यज्ञ
- रत्न धारण
- दान एवं व्रत

5.6.5 ग्रह शान्ति के लाभ

मानसिक शांति की प्राप्ति
रोग एवं कष्टों में कमी
सौभाग्य एवं सफलता में वृद्धि
सकारात्मक ऊर्जा का संचार

- नवग्रह शांति
- रुद्राभिषेक
- महामृत्युंजय हवन

इनसे मानसिक एवं शारीरिक संतुलन प्राप्त होता है।

5.7 मानसिक रोगों में ज्योतिषीय चिकित्सा

मानसिक स्वास्थ्य मानव जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। चिंता, अवसाद, भय, क्रोध, अनिद्रा जैसे मानसिक रोग आधुनिक जीवन में तेजी से बढ़ रहे हैं। वैदिक ज्योतिष के अनुसार मानसिक स्थिति पर **चंद्रमा, बुध, शनि, राहु एवं केतु** का विशेष प्रभाव होता है। जब ये ग्रह अशुभ या पीड़ित होते हैं, तब मानसिक असंतुलन उत्पन्न होता है। ऐसे में **ज्योतिषीय चिकित्सा** सहायक भूमिका निभाती है।

मानसिक रोगों से जुड़े प्रमुख ग्रह

ग्रह	मानसिक प्रभाव
चंद्र	मन, भावना, अवसाद
बुध	बुद्धि, चिंता, घबराहट
शनि	भय, अकेलापन, निराशा
राहु	भ्रम, फोबिया
केतु	मानसिक विच्छेदन

5.7.1 प्रमुख मानसिक रोग एवं ज्योतिषीय कारण

अवसाद (Depression)

- चंद्रमा निर्बल या पीड़ित
- शनि का चंद्र पर प्रभाव

चिंता एवं तनाव

- बुध पीड़ित
- राहु का प्रभाव

अनिद्रा

- चंद्र व शनि असंतुलन
- चंद्र-राहु युति

भय एवं नकारात्मक विचार

- राहु-केतु दोष
- चंद्रमा पर पाप ग्रह दृष्टि

5.7.2 **मानसिक रोगों में ज्योतिषीय चिकित्सा के उपाय**

मंत्र चिकित्सा

- चंद्र मंत्र – मानसिक शांति हेतु
- महामृत्युंजय मंत्र – भय व तनाव निवारण
- बुध मंत्र – एकाग्रता व बुद्धि के लिए

ध्यान एवं प्राणायाम

- चंद्र संतुलन हेतु ध्यान
- अनुलोम-विलोम, भ्रामरी प्राणायाम
- नियमित प्रार्थना

रत्न एवं उपरत्न

- मोती (चंद्र) – मानसिक स्थिरता
- पन्ना (बुध) – एकाग्रता

5.8 बोधात्मक प्रश्न

1. **ज्योतिषीय चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य क्या है?**

क . केवल भविष्य बताना

ख . ग्रहों के दुष्प्रभाव को संतुलित करना

ग . तंत्र विद्या का प्रयोग

घ . रोग का तुरंत इलाज

2. मानसिक स्वास्थ्य पर किस ग्रह का सर्वाधिक प्रभाव माना जाता है?

क. सूर्य

ख. मंगल

ग. चंद्र

घ. गुरु

3. निम्न में से कौन-सा उपाय ज्योतिषीय चिकित्सा में शामिल नहीं है?

क. मंत्र जप

ख. हवन

ग. शल्य चिकित्सा

घ. रत्न धारण

4. रत्न चिकित्सा का उद्देश्य क्या है?

क. ग्रहों को निर्बल करना

ख. ग्रहों की शक्ति बढ़ाना

ग. रोग छिपाना

घ. भाग्य बदलना

5. किस ग्रह के अशुभ प्रभाव से भय एवं भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है?

क . गुरु

ख. शुक्र

ग. राहु

घ. सूर्य

6. ज्योतिषीय चिकित्सा में मंत्र जप की सामान्य संख्या क्या होती है?

क. 11

ख. 51

ग. 108

घ. 500

7. मानसिक रोगों में ज्योतिषीय चिकित्सा को कैसे अपनाना चाहिए?

क. मुख्य चिकित्सा के रूप में

ख.आधुनिक चिकित्सा के स्थान पर

ग. पूरक उपचार के रूप में

D) केवल अंधविश्वास से

8. नवग्रह शांति में कितने ग्रहों की पूजा की जाती है?

क. 7

ख. 8

ग. 9

घ. 12

9. चंद्रमा निर्बल होने पर कौन-सी समस्या हो सकती है?

क. हड्डी रोग

ख. मानसिक तनाव

ग. नेत्र रोग

घ. रक्त विकार

10. ज्योतिषीय चिकित्सा का आधार किस शास्त्र पर है?

क. अर्थशास्त्र

ख. राजनीति शास्त्र

ग. वैदिक ज्योतिष

घ. समाजशास्त्र

5.9 सारांश

ज्योतिषीय चिकित्सा इकाई मानव जीवन को **संतुलित, स्वस्थ एवं सकारात्मक** बनाने की एक प्राचीन और प्रभावशाली पद्धति है। यदि इसे सही मार्गदर्शन एवं शास्त्रसम्मत विधि से अपनाया जाए, तो यह जीवन में अद्भुत परिवर्तन ला सकती है । ज्योतिष शास्त्र में चिकित्सा पद्वति मणि – मन्त्र- दान – स्नान – औषधि आदि के द्वारा उपचार किया जाता है । कुछ हद तक आयुर्वेद और ज्योतिष में उपचार की विधा एक सामान है आयुर्वेद भी कर्मजन्य व्याधियों को देव्याव्यपाश्रित चिकित्सा करने का निर्देश देता है ।

5.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1.ख
2. ग
3. ग
4 .ख
5. ग
6. ग
7. ग
8. ग
9. ख
10. ग

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत {प्रो{ शुकदेव चतुर्वेदी.
चरक संहिता सूत्र स्थान सुश्रुत संहिता /
प्रश्नमार्ग /
माधव निदान
गदावाली -
ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार {प्रोशुकदेव चतुर्वेदी. श्री ला दिल्ली -ब. शा. रा. सं. विद्यापीठ नई.
{
वीर सिंहावलोक
स्वस्थ वृत्त विज्ञान { डॉ. राम हर्ष सिंह } चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम , दिल्ली।

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.ज्योतिषीय चिकित्सा का विस्तारपूर्वक परिचय दीजिए।
2. मणि-मन्त्र-दान- स्नान के विषय में विस्तार से लिखो।
3. ग्रह चिकित्सा से क्या अभिप्राय है , विस्तारपूर्वक लिखिए।
4. आज के सन्दर्भ में ज्योतिषीय चिकित्सा का क्या महत्व।